अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

सितम्बर २०२१

भारत – एक विहंगम दृष्टि

अग्निशिखा सितम्बर २०२२ वर्ष ५३, अंक २, पूर्णांक ६२५

विषय-सूची

भारत—एक विहंगम दृष्टि

(श्रीअरविन्द के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय		३
भारत की अन्तरात्मा		६
भारतीय मानस		११
आह्वान	'श्रीमातृवाणी' से	२२
सतत प्रगतिशील भारत	रवीन्द्रजी	२३
क्षमा का आदर्श		२६

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		२९
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : हमारे लिए मार्ग खोल दिया गया है	नवजातजी	३१
पैसा	कुवेम्पु	३३
भारत भारत बने	रवीन्द्रजी	३४
'ऋषिवर बोले' : भारत की प्रगति का तरीक़ा	रवीन्द्रजी	३६
इन्तज़ार में...	आयुषी शर्मा	३८
'बेटी को पीहर पहुँचाना है'	वन्दना	४२

हाथ जोड़ कर हम अपने सभी पाठकों से क्षमायाचना कर रहे हैं कि पिछले महीने, अगस्त के पुनीत अवसर की अग्निशिखा में अन्त के कुछ पृष्ठ (पृ.४३ से पृ.५० तक) छपने से रह गये!!

आप सबकी क्षमा ही हमारा सम्बल होगी...। सम्भव होगा तो हम छूटी हुई सामग्री हाल के किसी अंक में देने की कोशिश करेंगे। वैसे आप On line: agnishikha.aurosociety.org जाकर पत्रिका पढ़ सकते हैं।

सन्देश

केवल भारत की आत्मा ही इस देश को एक कर सकती है।

बाह्य रूप में भारत के प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषा, सभी दृष्टियों से बहुत अलग-अलग हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का प्रयत्न केवल विनाशकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। वह आध्यात्मिक सत्य, सृष्टि की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य मूल के प्रति अभीप्सा में तीव्र है, और इस अभीप्सा के साथ एक होकर सारा देश अपने ऐक्य को फिर से पा सकता है। उस ऐक्य का अस्तित्व प्रबुद्ध मानस के लिए कभी समाप्त नहीं हुआ।

भारत भविष्य के लिए काम करे और सबका नेतृत्व करे। इस तरह वह जगत् में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०२

सम्पादकीय : सचमुच भारत क्या है? भारत के बारे में विभिन्न प्रकार के विचार तथा सिद्धान्त हैं जिनमें से अधिकांश सचमुच विचार तथा समझ के विदेशी उदाहरणों के उधार लिये हुए चिराग़ हैं। लेकिन भारत के सच्चे अन्तर्दर्शन को केवल भारतीय अन्तरात्मा द्वारा ही समझा जा सकता है। भारतीय विचार और उसकी आत्मा को श्रीअरविन्द—जगत् के महानतम मनीषी—के सिवाय और कौन सचमुच समझ सकता है।

इस अंक में हम उनकी तथा श्रीमाँ की कृतियों के सागर से कुछ एक मोती चुन कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं।

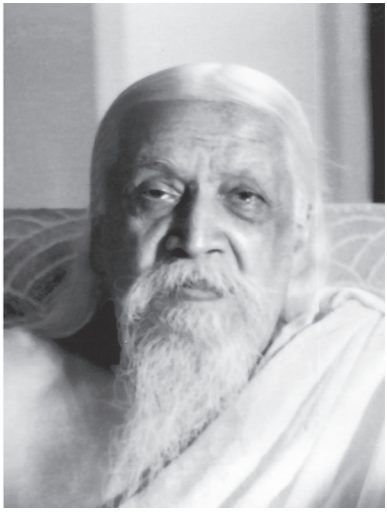

प्राचीन *आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूतियों को उनकी सम्पूर्ण भव्यता, गहराई और पूर्णता के साथ पुनः उपलब्ध करना–यह है प्रथम, सर्वाधिक आवश्यक कार्य; इस आध्यात्मिकता का दर्शनशास्त्र, साहित्य, कला, विज्ञान एवं आलोचनात्मक ज्ञान के नये रूपों में प्रवाह–यह है दूसरा कार्य, भारतीय चेतना के प्रकाश में आधुनिक समस्याओं का मौलिक तरीक़े से समाधान करना और एक आध्यात्मिक समाज के एक श्रेष्ठतर समन्वय की रचना करना–यह है तीसरा और सबसे कठिन कार्य। इन तीन दिशाओं में इसकी सफलता ही वह मान-दण्ड होगा जिससे भविष्य की मानवता के लिए इसकी सहायता को मापा जा सकेगा।*

CWSA खण्ड २०, पृ. १५ —श्रीअरविन्द

... वह धर्म क्या है जिसे हम सनातन धर्म कहते हैं? वह हिन्दू धर्म इसी नाते है कि हिन्दूजाति ने इसको रखा है, क्योंकि समुद्र और हिमालय से घिरे हुए इस प्रायद्वीप के एकान्तवास में यह फला-फूला है, क्योंकि इस पवित्र और प्राचीन भूमि पर इसकी युगों तक रक्षा करने का भार आर्यजाति को सौंपा गया था। परन्तु यह धर्म किसी एक देश की सीमा से घिरा नहीं है, यह संसार के किसी सीमित भाग के साथ विशेष रूप से और सदा के लिए बँधा नहीं है। जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं वह वास्तव में सनातन धर्म है, क्योंकि यही वह विश्वव्यापी धर्म है जो दूसरे सभी धर्मों का आलिंगन करता है। यदि कोई धर्म विश्वव्यापी न हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता। कोई संकुचित धर्म, साम्प्रदायिक धर्म, अनुदार धर्म कुछ काल और किसी मर्यादित हेतु के लिए ही रह सकता है। यही एक ऐसा धर्म है जो अपने अन्दर विज्ञान, यानी साइंस के आविष्कारों और दर्शनशास्त्र के चिन्तनों का पूर्वाभास देकर और उन्हें अपने अन्दर मिला कर जड़वाद पर विजय प्राप्त कर सकता है। यही एक धर्म है जो मानवजाति के हृदय में यह बात बिठा देता है कि भगवान् हमारे निकट हैं, यह उन सभी साधनों को अपने अन्दर ले लेता है जिनके द्वारा मनुष्य भगवान् के पास पहुँच सकते हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक क्षण, सभी धर्मों के माने हुए इस सत्य पर ज़ोर देता है कि भगवान् हर व्यक्ति और हर चीज़ में हैं तथा हम उन्हीं में चलते-फिरते हैं और उन्हीं में हम निवास करते हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो इस सत्य को केवल समझने और उस पर विश्वास करने में ही हमारा सहायक नहीं होता बल्कि अपनी सत्ता के अंग-अंग में इसका अनुभव करने में भी हमारी मदद करता है। यही एक धर्म है जो संसार को दिखा देता है कि संसार वासुदेव की लीला ही है। यही एक ऐसा धर्म है जो हमें यह बताता है कि इस लीला में हम अपनी भूमिका अच्छी-से-अच्छी तरह कैसे निभा सकते हैं, जो हमें यह दिखाता है कि इसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म नियम क्या हैं, इसके महान्-से-महान् विधान कौन-से हैं। यही एक ऐसा धर्म है जो जीवन की छोटी-से-छोटी बात को भी धर्म से अलग नहीं करता, जो यह जानता है कि अमरता क्या है और जिसने मृत्यु की वास्तविकता को हमारे अन्दर से एकदम निकाल दिया है।

CWSA खण्ड ८, पृ. ११-१२

भारत की अन्तरात्मा

एकमेवाद्वितीयम्

भारतीय धार्मिक मन के इस समन्वयात्मक रूप और सबको अपने आलिंगन में समेटने वाले एकत्व पर बल देना आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा हम भारतीय जीवन के सम्पूर्ण अर्थ तथा भारतीय संस्कृति के समस्त आशय को खो बैठेंगे। इस व्यापक और नमनीय रूप को पहचान लेने पर ही हम समाज और व्यक्ति के जीवन पर इसके सम्पूर्ण प्रभाव को हृदयंगम कर सकते हैं। और यदि हमसे पूछा जाये, "परन्तु आख़िरकार हिन्दूधर्म है क्या, यह सिखाता क्या है, इसकी नित्यचर्या क्या है, इसके सर्वसम्मत अंग कौन-से हैं," तो इसका उत्तर हम यह दे सकते हैं कि भारतीय धर्म तीन मूल विचारों या यह कहें कि एक उच्चतम एवं विशालतम आध्यात्मिक अनुभव के तीन मूल तत्त्वों पर प्रतिष्ठित है। पहला है वेद के उस *'एकं सत्'* का विचार जिसे ज्ञानी लोग भिन्न-भिन्न नाम देते हैं, जो उपनिषदों का एकमेवाद्वितीय है, जो यहाँ जो कुछ है वह 'सब' है, और इस सब कुछ से परे भी है, बौद्धों के शाश्वत तत्त्व का, मायावादियों के ब्रह्म का, ईश्वरवादियों के उस परम ईश्वर या पुरुष का जो जीव और प्रकृति को अपनी शक्ति के अन्दर धारण करता है, उस सबका विचार है—एक शब्द में वह सनातन है, अनन्त है। यह पहला सर्वसम्मत आधार है; परन्तु मानव बुद्धि इसे अनन्त प्रकार के सूत्रों में प्रकट कर सकती है और करती है। इन शाश्वत, इन अनन्त, इन सनातन को खोजना, इनके अत्यन्त निकट पहुँचना तथा इनके साथ किसी प्रकार का या किसी मात्रा में एकत्व प्राप्त करना ही इसके आध्यात्मिक अनुभव का उच्चतम शिखर एवं चरम प्रयास है। यही भारत के धार्मिक मन का प्रथम सार्वजनीन 'विश्वास' है।

CWSA खण्ड २०, पृ. १९३-९४

एकमेव अनन्त तक पहुँचने के विभिन्न पथ

इस आधार को किसी भी सूत्र के रूप में स्वीकार करो, भारत में माने जाने वाले सहस्रों पथों में से किसी एक के द्वारा या, यहाँ तक कि, उनसे निकलने वाले किसी नये पथ के द्वारा इस महान् आध्यात्मिक लक्ष्य का

अनुसरण करो, तुम इस धर्म के मर्म तक पहुँच जाओगे। क्योंकि, इसका दूसरा मूलभूत विचार यह है कि सनातन एवं अनन्त के पास मनुष्य नानाविध मार्गों से पहुँच सकता है। 'अनन्त' अनेक अनन्तताओं से पूर्ण है और इन अनन्तताओं में से प्रत्येक, अपने-आपमें, वह सनातन ही है। और यहाँ सृष्टि की सीमाओं के अन्दर परमेश्वर अनेक मार्गों से अपने-आपको संसार में व्यक्त और चरितार्थ करते हैं, परन्तु प्रत्येक मार्ग उन सनातन ही का है। क्योंकि, प्रत्येक सान्त में हम अनन्त को खोज सकते हैं और उनके आकारों एवं प्रतीकों के रूप में सभी चीज़ों के द्वारा हम उनके पास पहुँच सकते हैं; सभी वैश्व शक्तियाँ उस एकमेव की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, सब बल उसी के बल हैं। प्रकृति के कार्यों के पीछे विद्यमान देवताओं को एक ही देवाधिदेव की शक्तियों, नामों और व्यक्तित्वों के रूप में देखना और पूजना होगा। एक ही अनन्त चित्-शक्ति, कार्य-सञ्चालक शक्ति, परम संकल्प-बल या विधान, माया, प्रकृति, शक्ति या कर्म सभी घटनाओं के पीछे अवस्थित है चाहे वे हमें अच्छी लगें या बुरी, स्वीकार्य लगें या अस्वीकार्य, सौभाग्यपूर्ण लगें या दुर्भाग्यपूर्ण। वे 'अनन्त' सृष्टि करते हैं और ब्रह्मा कहलाते हैं; वे प्रतिपालन करते हैं और विष्णु कहलाते हैं; वे संहार करते हैं या अपने अन्दर समेट लेते हैं और रुद्र या शिव कहलाते हैं। परमा शक्ति, जो स्थिति एवं रक्षा के कर्म में दयाशील हैं, जगन्माता, लक्ष्मी या दुर्गा हैं या फिर वे इन रूपों को धारण करती हैं। अथवा संहार के छद्मवेश में भी दयाशील वे चण्डी हैं या वे काली अर्थात्, कृष्णवर्णा माँ हैं। एकमेव परमेश्वर अपने-आपको अपने गुणों के रूप में नानाविध नामों और देवताओं में प्रकट करते हैं। वैष्णव का दिव्य-प्रेममय ईश्वर और शाक्त का दिव्य-शक्तिमय ईश्वर दो विभिन्न देवता प्रतीत होते हैं; पर वास्तव में वे विभिन्न रूपों में एक ही अनन्त देव हैं। मनुष्य नामों और रूपों में से किसी के भी द्वारा, ज्ञानपूर्वक या अज्ञानावस्था में, उन परम के पास पहुँच सकता है; क्योंकि इनके द्वारा और इनके परे हम अन्ततोगत्वा परमोच्च अनुभव की ओर बढ़ सकते हैं। CWSA खण्ड २०, पृ. १९४-९५

प्रत्येक के अन्दर बसे भगवान्

भारतीय धर्म के मूल में जो परम-महत्त्वपूर्ण तीसरा विचार काम कर

रहा है वह आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन के लिए अत्यन्त शक्तिशाली है। वह यह है कि जहाँ परम 'तत्' या भगवान् को विश्व-चेतना में से होकर और समस्त आन्तर एवं बाह्य प्रकृति को भेद कर तथा इन्हें पार करके प्राप्त किया जा सकता है, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर, अपनी ही सत्ता के आध्यात्मिक भाग के अन्दर, उन 'तत्' या भगवान् से मिल सकता है क्योंकि उसमें कोई ऐसी वस्तु है जो एकमेव भागवत सत्ता के साथ घनिष्ठ रूप से एकीभूत या कम-से-कम घनिष्ठतः सम्बद्ध है। भारतीय धर्म का सार एक ऐसे विकास और जीवन को लक्ष्य बनाना है जिससे हम अज्ञान को—जो इस आत्मज्ञान को हमारे मन और प्राण से छुपाये रखता है—पार करके अपने अन्तःस्थित भगवान् को जान सकें। ये ही चीज़ें एक साथ मिल कर हिन्दूधर्म का सर्वस्व हैं, इसका मूल भाव हैं और, यदि किसी 'विश्वास' की ज़रूरत हो तो, ये ही इसका विश्वास भी हैं।

CWSA खण्ड २०, पृ. १९५

वैदिक योग

परन्तु वैदिक शिक्षा की सबसे महान् शक्ति, जिसने इसे बाद के भारतीय दर्शनों, धर्मों और योग-पद्धतियों का मूल स्रोत बना दिया, इस बात में थी कि उसे किस प्रकार मनुष्य के आन्तरिक जीवन पर प्रयुक्त किया जाता था। इस स्थूल जगत् में मनुष्य मर्त्य जीवन के "भूरि अनृत" (अत्यधिक असत्य) के तथा मृत्यु के अधीन होकर रहता है। इस मृत्यु से ऊपर उठने के लिए, अमरों की पंक्ति में बैठने के लिए उसे असत्य से सत्य की ओर मुड़ना होता है; उसे प्रकाश की ओर उन्मुख होना और अन्धकार की शक्तियों से जूझना तथा उन्हें जीतना पड़ता है। यह कार्य वह दिव्य शक्तियों के साथ अपना सम्पर्क स्थापित करके और उनकी सहायता लेकर सम्पन्न करता है; इस सहायता को नीचे पुकार लाने का तरीक़ा वैदिक गुह्यदर्शियों का एक गुह्य विषय था। इसी उद्देश्य से बाह्य यज्ञ के प्रतीकों को सम्पूर्ण जगत् के "गुह्यों" की ही भाँति एक आन्तरिक अर्थ प्रदान किया गया है; वे मनुष्य के अन्दर देवताओं के आह्वान, सम्बन्ध जोड़ने वाले यज्ञ, एक घनिष्ठ आदान-प्रदान, पारस्परिक सहायता और अन्तर्मिलन को सूचित करते हैं। मनुष्य के अन्दर देवताओं की शक्तियों की प्रतिष्ठा होती है और उसके साथ

ही दैवी प्रकृति की विश्वमयता का गठन भी। कारण, देवता सत्य के रक्षक और संवर्धक हैं, अमर भगवान् की शक्तियाँ हैं, अनन्त माता—'अदिति' के पुत्र हैं; अमरता का मार्ग देवताओं का ऊर्ध्वमुख मार्ग है, 'सत्य' का मार्ग है, एक यात्रा एवं आरोहण है जिसके द्वारा सत्य के विधान, *ऋतस्य पन्थाः*, की ओर विकास होता है। मनुष्य अपनी भौतिक सत्ता की ही नहीं बल्कि अपनी मानसिक और साधारण चैत्य प्रकृति की सीमाओं को लाँघ कर और सत्य के उच्चतम स्तर एवं परम व्योम में पहुँच कर अमरत्व प्राप्त करता है : क्योंकि वही अमृतत्त्व का आधार और त्रिविध 'अनन्त' का मूल धाम है। इन विचारों के आधार पर वैदिक तत्त्ववेत्ताओं ने एक गहन मनोवैज्ञानिक एवं आन्तरात्मिक साधना का निर्माण किया जो अपने से परे एक उच्चतम आध्यात्मिकता की ओर ले जाती थी और जिसमें बाद के भारतीय योग का बीज निहित था।

CWSA खण्ड २०, पृ. २०२-०३

उपनिषद्

उपनिषद् भारतीय मन की परमोच्च कृति हैं, और यह चीज़ बहुत महत्त्वपूर्ण है, यह एक अनुपम मनोवृत्ति का तथा आत्मा की असाधारण प्रवृत्ति का प्रमाण है कि इनमें भारत की प्रतिभा की सर्वोच्च आत्म-अभिव्यक्ति, उसका उदात्ततम काव्य, उसकी विचार और शब्द की महत्तम रचना साधारण ढंग की साहित्यिक या काव्यात्मक श्रेष्ठ कृति न होकर इस प्रकार के साक्षात् और गभीर आध्यात्मिक सत्यदर्शन का विशाल प्रवाह है। उपनिषद् गम्भीर धार्मिक ग्रन्थ हैं—क्योंकि वे गहनतम आध्यात्मिक अनुभवों का अभिलेख हैं—अक्षय ज्योति, शक्ति और विशालता से सम्पन्न, सत्य-प्रकाशक और अन्तर्ज्ञानात्मक दर्शन के लिपिबद्ध विवरण हैं और साथ ही, चाहे वे पद्य में लिखे हुए हों या लयबद्ध गद्य में, पूर्ण एवं अचूक अन्तःप्रेरणा से युक्त आध्यात्मिक कविताएँ हैं, जिनकी पदावलि नितान्त स्वाभाविक और लय तथा अभिव्यञ्जना अद्भुत हैं। वे एक ऐसे मन की अभिव्यक्ति हैं जिसमें दर्शन, धर्म और काव्य एक हो गये हैं, क्योंकि यह धर्म एक मतवाद में ही समाप्त नहीं हो जाता और न ही यह किसी धार्मिक-नैतिक अभीप्सा तक ही सीमित है, यह तो परमेश्वर एवं आत्म-तत्त्व की और हमारी आत्मा

एवं सत्ता के उच्चतम और समग्र सत्स्वरूप की असीम खोज तक ऊँचा जाता है और एक प्रकाशपूर्ण ज्ञान तथा भावविभोर एवं परिपूर्ण अनुभव के हर्षावेश में अपनी वाणी उच्चारित करता है, इसी प्रकार यह दर्शन सत्य के विषय में कोई अमूर्त बौद्धिक कल्पना नहीं है और न यह तार्किक बुद्धि की कोई रचना ही है, यह तो एक सत्य है जिसे अन्तरतम मन और आत्मा ने जीवन में उतारा है तथा एक सुनिश्चित खोज और उपलब्धि को व्यक्त करने के हर्ष में अपने अन्दर धारण किया है, और यह काव्य एक ऐसे सौन्दर्यात्मक मन की कृति है जो दुर्लभतम आध्यात्मिक आत्मदर्शन के आश्चर्य और सौन्दर्य को तथा आत्मा, परमात्मा और जगत् के गहनतम प्रोज्ज्वल सत्य को प्रकट करने के लिए अपने साधारण क्षेत्र से ऊपर उठ कर उसके परे पहुँच गया है। यहाँ वैदिक ऋषियों का अन्तर्ज्ञानात्मक मन और अंतरंग आध्यात्मिक अनुभव उस परमोच्च परिणति को प्राप्त होता है जिसमें आत्मा, कठ उपनिषद् के शब्दों में, अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर देती है, अपनी आत्म-अभिव्यक्ति की ठेठ वाणी को प्रकाशित करती है और मन के समक्ष उन लय-तालों के स्पन्दन को खोल देती है जो आध्यात्मिक 'श्रुति' में अपने-आपको अन्दर-ही-अन्दर दोहराते हुए अन्तरात्मा का गठन करते तथा उसे आत्मज्ञान के शिखरों पर तृप्त और सर्वांगपूर्ण रूप में प्रतिष्ठित करते प्रतीत होते हैं।

CWSA खण्ड २०, पृ. ३२९-३०

... जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष ऊपर उठेगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म ऊपर उठेगा।

जब कहा जाता है कि भारतवर्ष महान् होगा तो उसका अर्थ होता है सनातन धर्म महान् होगा।

जब कहा जाता है कि भारतवर्ष बढ़ेगा और फैलेगा तो इसका अर्थ होता है सनातन धर्म बढ़ेगा और संसार पर छा जायेगा। धर्म के लिए और धर्म के द्वारा ही भारत का अस्तित्व है।

CWSA खण्ड ८, पृ. १०

भारतीय मानस

इतिहास की परम्परा

प्राचीन वैदिक शिक्षा के अनेक अंगों में से एक था महत्त्वपूर्ण परम्परा, **इतिहास**, का ज्ञान; प्राचीन समालोचक बाद के साहित्यिक महाकाव्यों से महाभारत और रामायण का भेद दिखलाने के लिए इसी ('इतिहास') शब्द का प्रयोग करते थे। इतिहास का मतलब था कोई प्राचीन ऐतिहासिक या उपाख्यानात्मक परम्परा जिसे एक अर्थपूर्ण गाथा या कथा के रूप में सृजन के लिए प्रयुक्त किया जाता था और वह गाथा या कथा किसी आध्यात्मिक या धार्मिक अथवा नैतिक या आदर्शात्मक अर्थ को प्रकट करती थी और इस प्रकार जाति के मन का गठन करती थी। महाभारत और रामायण भी बड़े पैमाने पर इसी प्रकार के इतिहास हैं जिनका उद्देश्य अत्यन्त व्यापक है। जिन कवियों ने इन बृहत् काव्य-ग्रन्थों की रचना की और जिन्होंने इनमें कुछ चीज़ें जोड़ दीं उनका उद्देश्य केवल एक प्राचीन कथा का सुन्दर या श्रेष्ठ ढंग से वर्णन करना नहीं था और न रस और भाव के प्रचुर ऐश्वर्य से परिपूर्ण कोई कविता रचना ही था, यद्यपि उन्होंने ये दोनों कार्य भी महान् सफलता के साथ सम्पन्न किये; पर वास्तव में उन्होंने जीवन के शिल्पियों और मूर्तिकारों तथा राष्ट्रीय चिन्तन, धर्म, नैतिकता और संस्कृति के अर्थपूर्ण आकारों के सर्जनशील व्याख्याकारों और निर्माताओं के रूप में अपना कर्तव्य समझते हुए इनकी रचना की। जीवन-विषयक चिन्तन का गहरा दबाव, धर्म और समाज के सम्बन्ध में एक व्यापक और जीवनप्रद दृष्टिकोण एवं दार्शनिक विचार का एक विशेष स्वर इन कविताओं में सर्वत्र ओतप्रोत है और भारत की समस्त प्राचीन संस्कृति को बौद्धिक परिकल्पना और जीवन्त निरूपण की महान् शक्ति के साथ इनमें साकार रूप दिया गया है। महाभारत को पाँचवाँ वेद कहा गया है, इन दोनों कविताओं के बारे में यह कहा गया है कि ये केवल महान् कविताएँ ही नहीं बल्कि धर्मशास्त्र हैं, अर्थात्, एक व्यापक धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक शिक्षा के ग्रन्थ हैं और जाति के मन तथा जीवन पर इनका प्रभाव और प्रभुत्व इतने महान् रहे हैं कि इन्हें भारतवासियों की बाइबल कहा गया है। परन्तु यह कोई एकदम ठीक उपमा नहीं है, क्योंकि भारतवासियों की बाइबल में वेद और

उपनिषद्, पुराण और तन्त्र तथा धर्मशास्त्र भी समाविष्ट हैं, प्रादेशिक भाषाओं के धार्मिक काव्य की बृहत् राशि की बात तो अलग ही रही। इन महाकाव्यों का कार्य उच्च दार्शनिक और नैतिक विचार तथा सांस्कृतिक आचार को जनता में प्रचलित करना था; भारत की अन्तरात्मा और विचारधारा में जो भी चीज़ें सर्वश्रेष्ठ थीं या जो उसके जीवन के लिए सच्ची थीं अथवा जो भी चीज़ें उसकी सर्जनशील कल्पना और उसके आदर्श मन के लिए वास्तविक थीं या फिर उसकी सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक और धार्मिक संस्कृति के विशिष्ट स्वरूप को द्योतित करने तथा उस पर प्रकाश डालने वाली थीं उन सबको सुस्पष्ट रूप में, हृदयग्राही उभार और प्रभाव के साथ एक महान् काव्य के ढाँचे में तथा एक काव्यात्मक कथा की पृष्ठभूमि में और उन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के, जो जनता के लिए स्थायी राष्ट्रीय स्मृतियाँ और प्रसिद्ध प्रतिनिधि-पुरुष बन गये थे, जीवन-केन्द्र के चारों ओर प्रकट करना ही इन महाकाव्यों का कार्य था। इन सब चीज़ों को एक साथ जुटा कर कलात्मक क्षमता और हृदयग्राही प्रभाव के साथ एक ऐसे काव्य-संग्रह में व्यवस्थित किया गया जो परम्पराओं की अभिव्यक्ति था। वे परम्पराएँ आधी काल्पनिक और आधी ऐतिहासिक थीं परन्तु आगे चल कर लोगों ने उन्हें अत्यन्त गभीर और जीवन्त सत्य के रूप में तथा अपने धर्म के एक अंग की न्याईं मूल्य प्रदान किया। इस प्रकार रचित होकर महाभारत और रामायण, चाहे मूल संस्कृत में हों या प्रादेशिक भाषाओं में फिर से लिखी गयी हों, कथकों अर्थात् गाने वालों, पाठ करने वालों और व्याख्या करने वालों के द्वारा, जनसाधारण तक पहुँचीं, लोक-शिक्षा और लोक-संस्कृति का एक मुख्य साधन बन गयीं और बनी रहीं, इन्होंने भारतवासियों के विचार, चरित्र, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक मन का गठन किया, यहाँ तक कि अनपढ़ लोगों पर भी दर्शन, नीतिशास्त्र, सामाजिक और राजनीतिक विचारों, सौन्दर्यात्मक भाव, काव्य, कथा और उपन्यास का एक प्रकार का पर्याप्त रंग चढ़ाया। जो चीज़ सुशिक्षित वर्गों के लिए वेद और उपनिषद् में निहित थी, गम्भीर दार्शनिक सूत्र और ग्रन्थ में बन्द या धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र में कही गयी थी उसे यहाँ सर्जनक्षम और सजीव अलंकारों के रूप में प्रस्तुत किया गया था, किसी परिचित कहानी और उपाख्यान के साथ जोड़ दिया गया था और जीवन के विशद निरूपण

में घुला-मिला दिया गया था और इस तरह एक ऐसी घनिष्ठ एवं जीवन्त शक्ति बना दिया गया था जिसे काव्यमय वचन के द्वारा सभी लोग सहज में ही आत्मसात् कर सकते थे, क्योंकि वह वचन एक ही साथ अन्तरात्मा, कल्पना-शक्ति और बुद्धि को आकर्षित करता था।

CWSA खण्ड २०, पृ. ३४५-४७

भारतीय मानस की सच्ची कुञ्जी

वस्तुतः भारतीय मानस की सच्ची कुञ्जी है आध्यात्मिकता; अनन्तता का भाव उसके लिए सहज-स्वाभाविक है। भारतवर्ष ने इस सत्य को आरम्भ से ही देखा था, अपने बौद्धिकता के काल में और अपने बढ़ते हुए अज्ञान के काल में भी उसने अपनी इस अन्तर्दृष्टि को कभी नहीं खोया कि एकांगी प्रकाश से जीवन को सम्यक् रूप से नहीं देखा जा सकता, उसे केवल उसकी बाहरी भौतिकता की शक्तियों के द्वारा पूर्णता से नहीं जिया जा सकता। वह भौतिक शक्तियों और उनके नियमों की महत्ता के प्रति सजग था; भौतिक विज्ञानों के महत्त्व पर उसकी तीक्ष्ण दृष्टि थी; उसे ज्ञात था कि साधारण जीवन की कलाओं को कैसे व्यवस्थित करना चाहिये। लेकिन उसने यह देख लिया था कि भौतिक जीवन की पूरी सार्थकता तब तक प्राप्त नहीं होती जब तक कि अतिभौतिक के साथ उचित सम्बन्ध स्थापित न कर लिया जाये। उसने यह समझ लिया था कि जगत् की जटिलताओं की व्याख्या मनुष्य की वर्तमान शब्दावलि में नहीं की जा सकती, कि जीवन के पीछे अन्य शक्तियाँ हैं, स्वयं मनुष्य के अन्दर ऐसी अन्य शक्तियाँ हैं जिन्हें वह स्वयं ही सामान्यतः नहीं जानता है, कि मनुष्य अपनी सत्ता के एक छोटे से अंश के प्रति ही सचेतन होता है, अदृश्य सत्ता दृश्य सत्ता को सदा घेरे रहती है, अतीन्द्रिय सत्य इन्द्रियगोचर जगत् को घेरे रहता है, ठीक जैसे अनन्तता सदा सान्त को घेरे रहती है। उसने यह भी समझा कि मनुष्य के पास स्वयं से आगे जाने की शक्ति है, वह स्वयं जो है उससे अधिक समग्र और गहन रूप में बनने की शक्ति उसके पास है—ये ऐसे सत्य हैं जिन्हें यूरोप में अभी हाल ही में देखना शुरू हुआ है और अभी भी वे सामान्य बुद्धि के लिए बहुत ही बड़े सत्य हैं। भारतीय मानस ने मनुष्य से परे विभिन्न दिव्य शक्तियों का, देवों का दर्शन किया, इन देवों से भी परे

भगवान् का दर्शन किया और भगवान् से भी परे स्वयं की ही अनिर्वचनीय शाश्वतता को देखा; उसने इस सत्य का दर्शन किया कि हमारे जीवन के परे अनेक स्तरों पर जीवन है, हमारे वर्तमान मन से परे मन के भी अनेक स्तर हैं और इन सबसे परे उसने अन्तरात्मा की भव्यता का दर्शन किया। और, उसके बाद अपने उस अन्तर्ज्ञान के शान्त साहस से भर कर, जिस अन्तर्ज्ञान ने किसी प्रकार का कोई भय या तुच्छता नहीं जानी, जो किसी भी कर्म को करने में सकुचाया नहीं, चाहे फिर वह आध्यात्मिक कर्म हो या बौद्धिक, नैतिक हो या प्राणों के साहस का हो, उसने यह घोषित कर दिया कि यदि मनुष्य अपने संकल्प और ज्ञान को प्रशिक्षित कर ले तो इनमें से ऐसा कुछ भी नहीं जिसे उपलब्ध करना उसके लिए असम्भव हो; वह मन के इन स्तरों पर विजय पा सकता है, आत्म-रूप बन सकता है, स्वयं एक देव बन सकता है, 'ईश्वर' के साथ एकाकार हो सकता है, साक्षात् अनिर्वचनीय 'ब्रह्म'-स्वरूप बन सकता है। और पूर्णतया तार्किक व्यावहारिकता तथा वैज्ञानिकता के साथ एवं पूर्ण व्यवस्थित प्रकृति के द्वारा, जो उसकी मानसिकता की विशेषता थी, वह अपना पथ खोजने के लिए तुरन्त आगे चल पड़ा। अतः, इस अन्तर्दृष्टि और इस अभ्यास के दीर्घकालीन युगों ने उसके अन्दर जो चीज़ बहुत गहरी और पक्की कर दी वह थी उसकी आध्यात्मिकता, उसकी प्रबल चैत्य प्रवृत्ति, 'अनन्त' तक पहुँचने और उसे अधिकृत करने की तीव्र अभीप्सा, उसकी धार्मिक भावना की इतनी गहरी जड़ें कि जिन्हें उखाड़ा ही न जा सके, उसका आदर्शवाद, उसका 'योग' जिसने उसकी कला और उसके तत्त्वज्ञान को भी हमेशा आकर्षित किया।

CWSA खण्ड २०, पृ. ६-७

प्रखर बौद्धिकता

परन्तु यह परम आध्यात्मिकता, जीवन की ऊर्जा एवं आनन्द की अतिशय प्रचुरता और सृजनात्मकता ही वे तथ्य नहीं हैं जिन्होंने प्राचीन काल की भारतवर्ष की उस चेतना को बनाया था। यह किसी स्वच्छ अनन्त नील गगन के तले एक-दूसरे में उलझी-फँसी उष्णप्रदेशीय भव्य, सुन्दर वनस्पतियों का जंगल नहीं है। जो दृष्टि इस समृद्धि को देखने की अभ्यस्त

नहीं है उसके लिए थोड़ी-सी जगह में जीवन के नाना रूपों का भरा होना उलझन-जैसा महसूस होता है, उसे वह बहुलता की आलीशान क्रमहीनता या माप, सुन्दर सन्तुलन और कलाकारी का बेहिसाब अभाव लगता है। कारण यह है कि प्राचीन भारत की एक तीसरी शक्ति थी उसकी प्रखर बौद्धिकता जो एक ही साथ अतिसंयत और समृद्ध थी, अतिविशाल, बलिष्ठ और सूक्ष्म थी, शक्तिशाली और सुकोमल थी, अपने सिद्धान्तों में विस्तृत, विराट् थी और सूक्ष्म विस्तारों में विलक्षण थी। क्रमबद्धता और सुव्यवस्था इसकी प्रधान प्रवृत्ति थी, लेकिन यह सुव्यवस्था वस्तुओं के आन्तरिक स्वधर्म और सत्य की खोज पर आश्रित थी जो निष्ठापूर्वक इसका अभ्यास कर पाने की सम्भावना को सदा अपनी दृष्टि में रखती थी। भारतवर्ष प्रधानतया 'धर्म' और 'शास्त्र' की भूमि रहा है। उसने सदा प्रत्येक व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण जगत् की क्रियाओं में आन्तर सत्यों तथा नियमों, उसके 'धर्म' को ढूँढ़ा है; उस धर्म को प्राप्त करके, उसने उसे नानाविध रूपों में सँवारा और जीवन के बाहरी तथ्यों एवं नियमों में उस पर अमल करने के लिए विस्तृत विधान-व्यवस्था को गढ़ने का परिश्रम भी किया। उसका पहला युग 'परमात्म तत्त्व' की खोज से बहुत प्रकाशमय था; अपने दूसरे युग में उसने 'धर्म' की खोज पूरी की; तीसरे युग में उसने आरम्भिक सरल 'शास्त्रों' की पूर्ण विस्तारों के साथ संरचनाएँ कीं; किन्तु कोई भी युग ऐकान्तिक नहीं था, तीनों चीज़ें हर युग में विद्यमान रहीं।
CWSA खण्ड २०, पृ. ८-९

दो आदर्श

भारतीय मन के आदर्शों ने मानव चेतना की स्वाग्रही होने की भावना की ऊँचाइयों को, स्वतन्त्रता की प्यास और प्रभुता एवं अधिकृत करने की भावना को भी लिया है, और साथ ही आत्म-निराकरण, पराधीनता, समर्पण और आत्म-दान की ऊँचाइयों को भी उसी प्रकार समाविष्ट किया है। उसने जीवन में धन-सम्पन्न जीवन के आदर्श और दरिद्र-निर्धन जीवन के आदर्श को पूरी शान और भव्यता के चरम तक तथा नग्नता में सन्तोष को भी चरम तक दिखाया है। उसका अन्तर्ज्ञान इतना स्पष्ट और इतना साहसिक था कि वह अपने जीवन के प्रियतम विचारों और बँधी–कटी

आदतों से अन्धा नहीं हो जाता था। अगर उसे अपनी सामाजिक व्यवस्था के प्रतीक के रूप में वर्ण-व्यवस्था को रुढ़िबद्ध करना अनिवार्य लगा, तो भी वह यह कदापि नहीं भूला कि मानव-आत्मा और मानव-मन वर्णों के परे हैं, हालाँकि वर्ण-चेतना में यह भूल जाना बहुत स्वाभाविक है। कारण, उसने निम्नतम मनुष्य सत्ता में भी 'ईश्वर' का, 'नारायण' का दर्शन किया। उसने वर्णभेदों को महत्त्व दिया ताकि वह केवल उन पर घूम-फिर कर समस्त वर्णभेदों का निराकरण कर सके। अगर उसकी सारी राजनैतिक एवं परिस्थितिगत आवश्यकताओं ने उसे एकछत्र राज्य के सिद्धान्त को अन्त में अतिशय महत्त्व देने और राजा को ईश्वर घोषित करने को बाध्य किया और इसके पूर्व बने गणराज्यों तथा स्वतन्त्र संघशासनों को ख़तम करने को बाध्य किया, जो विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के लिए बहुत अधिक अनुकूल थे, और इस कारण यदि वह लोकतन्त्र विकसित नहीं कर सका, फिर भी उसके पास एक लोकतान्त्रिक बोध था जिसे उसने गाँवों में, परिषदों में, नगरपालिकाओं में, एक वर्ण के अन्तर्गत लागू किया और उसी ने सबसे पहले प्रजा में ईश्वर के वास को स्वीकारा और वह किसी भी राजा के लिए उसकी शक्ति की चरम सीमा पर भी यह उद्घोष कर सका—"हे राजन्! क्या हैं आप! प्रजाजनों के सर्वोच्च सेवक मात्र!" उसकी स्वर्णिम युग की अवधारणा है एक स्वतन्त्र आध्यात्मिक अराजकता। उसका आध्यात्मिक चरमपन्थवाद उसे ऐन्द्रिय सुख के जीवन में डूबने से नहीं रोक सका, और वहाँ भी उसने ऐन्द्रिय सुख के विस्तारों और गहराइयों की सम्पदा को ख़ूब बटोरा और ऐन्द्रिय अनुभूतियों की तीव्रताओं को खोजा। फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रकार परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के अनुशीलन का परिणाम कभी भी विशृंखलता नहीं रहा; और उसके सर्वाधिक सुखभोगी वृत्ति के काल ने भी ऐसा कुछ नहीं प्रदान किया जिसकी तुलना यूरोप में इसी वृत्ति के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न असंयत भ्रष्टाचार से की जा सके। कारण यह है कि भारतीय मन न केवल आध्यात्मिक और नैतिक है, बल्कि बौद्धिक और कलात्मक भी है, और ये दोनों गुण, बुद्धि का राजत्व और सौन्दर्य की लय और ताल अस्तव्यस्त भ्रान्त चेतना के परम विद्वेषी हैं। प्रत्येक चरमावस्था में भारतीय चेतना उस चरम अवस्था के एक विधान को खोजती है और उसे व्यावहारिक रूप में लागू करने में एक नियम, एक

मानदण्ड और एक संरचना-पद्धति की खोज करती है। इसके अतिरिक्त, चरम अवस्थाओं की सुदृढ़ता को एक और भी अधिक आन्तरिक गुण से, अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति से सन्तुलित करती है ताकि प्रत्येक उद्देश्य को उसकी सुदूर सम्भावनाओं तक ले जाकर भारतीय चेतना हमेशा अपने पूर्व-अर्जित ज्ञान की ओर मुड़ कर उस ज्ञान का उसमें समावेश करती है और उसके परिणाम-स्वरूप उसके कार्य और उस संस्था में एक सामञ्जस्य और एक सन्तुलन आता है। मिस्रवासी जिस सन्तुलन और लय पर आत्म-सीमित होकर पहुँचे भारतवर्ष वहाँ अपने बौद्धिक, नैतिक और सौन्दर्यबोध के सन्तुलन और अपने मन और प्राण की समन्वित अन्तःप्रेरणा से पहुँचा। CWSA खण्ड २०, पृ. ११-१२

प्राचीन वर्ण-प्रणाली

प्राचीन चातुर्वर्ण्य का मूल्य उसकी बाद की टूटी-फूटी पतन की अवस्था और स्थूल निरर्थक व्यंग्य रूप, अर्थात् जाति-प्रथा के द्वारा नहीं आँकना चाहिये। परन्तु यह ठीक वह वर्ण-प्रणाली भी नहीं थी जिसे हम अन्य सभ्यताओं में पाते हैं, पुरोहित-वर्ग, कुलीन-वर्ग, व्यापारी-वर्ग और दास या श्रमिकगण। हो सकता है कि बाहरी तौर पर इसका आरम्भ इसी प्रकार हुआ हो, लेकिन इसे एक एकदम से अलग और प्रकाशपूर्ण अर्थ दिया गया था। प्राचीन भारतीय विचार यह था कि मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार चार प्रकार के होते हैं। इनमें सर्वप्रथम और सर्वोच्च है, विद्या और चिन्तन एवं ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य; दूसरा है, शक्तिशाली और कर्मप्रधान मनुष्य, शासक, योद्धा, नेता, प्रशासक; इस क्रम में तीसरा है, आर्थिक मनुष्य, उत्पादक और धनोपार्जक, व्यापारी, शिल्पी, कृषक : ये सब द्विज थे जिन्हें दीक्षा प्राप्त होती थी, अर्थात्, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। अन्तिम था, कम विकसित श्रेणी का मनुष्य जो अभी सीढ़ी के इन सोपानों पर आरोहण करने के योग्य नहीं था, बुद्धिहीन और निःशक्त था, सृजन या कौशलपूर्ण उत्पादन में असमर्थ था, कौशलहीन शारीरिक श्रम और निम्न सेवाओं के योग्य मनुष्य था, अर्थात् शूद्र। समाज की आर्थिक व्यवस्था इन चार श्रेणियों के स्वरूप और क्रम में ढाली गयी थी। ब्राह्मण-वर्ग से कहा जाता था कि वे समाज को इसके पुरोहित, विचारक, विद्वान्, विधान-रचयिता, पण्डित, धार्मिक नेता और

मार्गदर्शक प्रदान करें। क्षत्रिय-वर्ग इसे इसके राजा, योद्धा, राज्यपाल और प्रशासक प्रदान करता था। वैश्य-वर्ण इसे इसके उत्पादक, कृषिविज्ञ, कारीगर, शिल्पी, वणिक् और व्यवसायी देता था। शूद्र-श्रेणी इसकी नौकर-चाकरों की आवश्यकता को पूरा करती थी। यहाँ तक तो इस व्यवस्था में इसकी असाधारण स्थिरता के सिवाय और, शायद, इसके अन्दर धर्म, चिन्तन और ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति के सिवाय और कोई विशेष बात नहीं थी, इनकी वह सर्वोच्च स्थिति केवल वर्ण-परम्परा के शिखर पर ही नहीं थी—क्योंकि इसका दृष्टान्त तो एक-दो अन्य सभ्यताओं से भी दिया जा सकता है—बल्कि सभी वर्णों के बीच एक प्रभुत्वपूर्ण शक्ति के रूप में थी। CWSA खण्ड २०, पृ. १७०-७१

आध्यात्मिक लक्ष्य

भारतीय और यूरोपीय संस्कृति में जो भेद है उसकी सारी जड़ भारतीय सभ्यता के आध्यात्मिक उद्देश्यों से पैदा होती है। यह उद्देश्य इस सभ्यता के सभी बाह्य रूपों और लय-तालों की समस्त समृद्ध और बहुविध विभिन्नता को जो एक मोड़ दे देता है, वही मोड़ इसे इसकी अपनी विलक्षण विशेषता प्रदान करता है। क्योंकि जो चीज़ इसमें अन्य संस्कृतियों जैसी है उस पर भी इस मोड़ के कारण एक विशिष्ट मौलिकता तथा विरल महत्ता की छाप पड़ जाती है। इस संस्कृति की प्रधान शक्ति, इसकी विचारधारा का सारतत्त्व, इसका प्रबल आवेग बस आध्यात्मिक अभीप्सा ही थी। इसने न केवल आध्यात्मिकता को जीवन का उच्चतम उद्देश्य माना, बल्कि मानवजाति की भूतकालीन परिस्थितियों में जहाँ तक करना सम्भव था वहाँ तक, इसने समस्त जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ देने का प्रयास भी किया परन्तु आध्यात्मिक प्रवृत्ति का मनुष्य के मन में सबसे पहला, अपूर्ण ही सही पर स्वाभाविक रूप धर्म होता है और इसीलिए आध्यात्मिक विचार की प्रधानता होने तथा जीवन पर अपना अधिकार जमाने का इसका प्रयास होने के कारण यह आवश्यक हो गया कि चिन्तन और कर्म को धार्मिक साँचे में ढाल दिया जाये और जीवन-सम्बन्धी प्रत्येक बात को स्थायी रूप से धार्मिक भावना से भर दिया जाये; फिर इस कार्य को पूरा करने के लिए एक व्यापक धर्म्य-दार्शनिक संस्कृति की आवश्यकता महसूस हुई।

निःसन्देह, सर्वोच्च आध्यात्मिकता जिज्ञासा की उस निम्नतर अवस्था से, जो धार्मिक आचार और सिद्धान्त से परिचालित होती है, बहुत ऊपर एक मुक्त और विस्तृत वायुमण्डल में विचरण करती है; वह उनकी सीमाओं को सहज ही अपने ऊपर नहीं लेती और जब उन्हें स्वीकार करती भी है तब भी वह उनको पार कर जाती है; वह एक ऐसे अनुभव में निवास करती है जो अनुष्ठानप्रिय धार्मिक मन के लिए दुर्बोध होता है। परन्तु उस उच्चतम आन्तरिक उच्चता पर मनुष्य तुरत-फुरत नहीं जा पहुँचता और यदि उससे तुरत इसकी माँग की जाये तो वहाँ वह कभी नहीं पहुँचेगा। आरम्भ में उसे आरोहण के निचले आधारों और अवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है; वह सिद्धान्त, पूजा, रूपक, संकेत, आकार या प्रतीक-रूपी किसी मचान की, मिश्रित अर्ध-प्राकृत प्रेरक भाव की किसी तुष्टि एवं अनुमति की अपेक्षा करता है जिसके आधार पर वह, अपने अन्दर आत्मा के मन्दिर का निर्माण करते समय, स्थित हो सके। केवल मन्दिर के पूरा बन जाने के बाद ही आधारों को हटाया जा सकता है तथा मचान को दूर किया जा सकता है। जिस धार्मिक संस्कृति को हम आज हिन्दूधर्म के नाम से पुकारते हैं उसने इस उद्देश्य को केवल पूरा ही नहीं किया बल्कि, कई अन्य साम्प्रदायिक धर्मों के विपरीत, वह संस्कृति अपने उद्देश्य को जानती भी थी। उसने अपना कोई नाम नहीं रखा, क्योंकि उसने स्वयं कोई साम्प्रदायिक सीमा नहीं बाँधी; उसने सारे संसार को अपना अनुयायी बनाने का दावा नहीं किया, किसी एकमात्र निर्दोष सिद्धान्त की प्रस्थापना नहीं की, मुक्ति का कोई एक ही संकीर्ण पथ या द्वार निश्चित नहीं किया; वह कोई मत या पन्थ की अपेक्षा कहीं अधिक मानव आत्मा के ईश्वरोन्मुख प्रयास की एक सतत विस्तारशील परम्परा थी। आध्यात्मिक आत्म-निर्माण और आत्म-उपलब्धि के लिए एक बहुमुखी और बहु-अवस्थात्मिका विशाल व्यवस्था होने के कारण उसे अपने विषय में 'सनातन धर्म' के उस एकमात्र नाम से, जिसे वह जानती थी, चर्चा करने का कुछ अधिकार था। यदि भारतीय धर्म के इस भाव और भावना का हम समुचित और यथार्थ मूल्य आँक सकें तभी हम भारतीय संस्कृति के सच्चे भाव और भावना को समझ सकते हैं।

CWSA खण्ड २०, पृ. १७८-७९

मानव-जीवन की चार आवश्यक बातें

भारतीय धर्म ने मानव-जीवन के सामने चार आवश्यक बातों को रखा। सबसे पहले इसने मन में सत्ता की एक ऐसी उच्चतम चेतना या अवस्था पर विश्वास रखने पर बल दिया जो विश्वव्यापी और विश्वातीत है, जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है, जिसमें सब कुछ उसके बिना जाने ही रहता और चलता-फिरता है और जिसे एक दिन सब अवश्य जान लेंगे जब वे उस वस्तु की ओर मुड़ेंगे जो पूर्ण, सनातन और अनन्त है। दूसरे, इसने व्यक्ति के जीवन के सामने विकास और अनुभव के द्वारा अपने-आपको तैयार करने की आवश्यकता को रखा जिससे कि अन्त में मनुष्य इस महत्तर सत्ता के सत्य में सचेतन रूप से विकसित होने का प्रयत्न करने के लिए प्रस्तुत हो जाये। तीसरे, इसने उसे ज्ञान और आध्यात्मिक या धार्मिक साधना का एक सुप्रतिष्ठित, सुपरीक्षित, बहुशाखा-प्रशाखाओं से युक्त और सदा विस्तृत होने वाला मार्ग प्रदान किया। अन्त में, जो लोग अभी इन उच्चतर सोपानों के लिए तैयार नहीं थे उनके लिए इसने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन की एक व्यवस्था, व्यक्तिगत और सामाजिक अनुशासन और आचार-व्यवहार का, मानसिक, नैतिक और प्राणिक विकास का एक ढाँचा प्रस्तुत किया जिसके द्वारा उनमें से प्रत्येक अपनी सीमाओं के अन्दर तथा अपनी प्रकृति के अनुसार इस प्रकार प्रगति करने में समर्थ हो कि अन्त में महत्तर जीवन के लिए तैयार हो जाये। इनमें से पहली तीन बातें प्रत्येक धर्म के लिए अत्यन्त अनिवार्य हैं, परन्तु हिन्दूधर्म ने अन्तिम को ही सदैव अत्यधिक महत्त्व दिया है; उसने जीवन के किसी भी अंग को एकदम लौकिक तथा धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन के लिए विजातीय वस्तु कह कर अपने क्षेत्र से बाहर नहीं छोड़ा है।

CWSA खण्ड २०, पृ. १८१

ऊर्जा की प्रचुरता

पृथ्वी पर आध्यात्मिकता स्वयं किसी शून्य में नहीं फलती-फूलती, वैसे ही जैसे कि हमारे पर्वत-शिखर अपने आधार के बिना स्वप्न के सम्मोहन की तरह बादलों से ऊपर नहीं उठते जाते। जब हम भारतवर्ष का अतीत देखते हैं तो जो दूसरी विशेषता हमारा ध्यान अपनी ओर खींचती है, वह

है उसकी विस्मयकारी प्राणशक्ति, उसकी कभी समाप्त न होने वाली जीवनी शक्ति और जीवन का सतत आनन्द, उसकी कल्पनातीत उर्वर सृजनात्मकता। कम-से-कम तीन हज़ार वर्षों से, वास्तव में इससे भी अधिक दीर्घ काल से, भारतभूमि बहुलता से और निरन्तरता से सृजन किये जा रही है, वह उदार भाव से, लगभग कभी समाप्त न होने वाली, बहुआयामी क्षमता से, अनेक गणराज्यों, राज्यों और साम्राज्यों की, दर्शनशास्त्रों एवं ब्रह्माण्डों की, सृष्टि के सिद्धान्तों की, विज्ञानों, प्रजातियों, कलाओं और काव्यों की, अनेक प्रकार के कीर्तिस्तम्भों, राजप्रासादों और मन्दिरों की, नगरपालिकाओं, सम्प्रदायों, समितियों, धार्मिक व्यवस्थाओं, न्याय-विधानों, संविधानों और रीति-रिवाजों की, भौतिक विज्ञानों, मनोविज्ञानों, योग-पद्धतियों, राजनीति और प्रशासन की पद्धतियों, आध्यात्मिक कलाओं, जागतिक कलाओं, व्यापार, उद्योग, सुन्दर हस्तकलाओं का सृजन किये जा रही है—यह सूची अनन्त है और लगभग प्रत्येक क्षेत्र की क्रियाशीलता की प्रचुरता गणनातीत है। वह रचती जाती है, रचती जाती है, न सन्तुष्ट होती है न थकती है; उसकी रचना-प्रक्रिया का कभी अन्त नहीं होगा, लगता है कि उसे बीच में साँस लेने का अवकाश, थोड़ा आलस्य या तन्द्रा का समय, विश्राम के लिए रिक्त स्थान भी मुश्किल से चाहिये। वह भौगोलिक सीमाओं के बाहर भी अपना विस्तार करती है; उसके पोत सागरों को पार करते हैं और वह अपनी समृद्धि की प्रचुरता का प्रवाह जूडिया, मिस्र और रोम तक फैलाती है। उसके उपनिवेश उसकी कला, उसके महाकाव्यों और उसके धार्मिक मतों का जावा-सुमात्रा द्वीपसमूहों (आर्कीपेलागो) में प्रसार करते हैं, उसके चिह्न मैसोपोटामिया के मरुस्थलों में भी मिलते हैं, उसके धर्म ने चीन और जापान को अधिकृत कर लिया और पश्चिम में पैलेस्टाइन और ऍलेक्ज़ैंड्रिया तक फैल गया, उपनिषदों के रूपकों और बौद्धधर्म की उक्तियों की प्रतिध्वनि ईसामसीह के वचनों में सुनायी दी। जैसे उसकी भूमि पर वैसे ही उसके कार्यों में, सर्वत्र जीवनी शक्ति की अतिशय बहुलता की झलक दिखायी देती है। यूरोपीय आलोचक इस बात की शिकायत करते हैं कि भारत के प्राचीन स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला में कहीं कोई मौन, कोई शून्य नहीं, अपनी सम्पन्नता की अभिव्यक्ति पर कोई रोक नहीं, कोई ख़ाली स्थान नहीं, वह हर फाँक को अपने मसाले से भरने की मेहनत

करती है, इंच-इंच जगह को खचाखच भर देती है। ख़ैर, यह दोष हो या न हो, यह उसके जीवन की, अतिशय प्रचुरता की, अपने अन्दर अनन्तता को भर डालने की आवश्यकता है। वह अपनी समृद्धि को उदारता से बिखरेती है क्योंकि यही उसकी अनिवार्यता है, ठीक वैसे ही जैसे 'अनन्तता' दिग्-दिगन्त के कण-कण को जीवन और ऊर्जा की स्फूर्त क्रियाशीलता से भर देती है, क्योंकि वह 'अनन्त' है।

CWSA खण्ड २०, पृ. ७-८

आह्वान

१५ अगस्त, १९४७

हे हमारी माँ, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननी, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहाँ तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे माँ, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जाग उठे हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं।

हमें वह पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सम्मुख उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें वह पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य-जाति को दिखा सकें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८२

सतत प्रगतिशील भारत

कौन-से क्षेत्र में भारत ने प्रयास नहीं किया, उपलब्धि नहीं की और सृजन नहीं किया और वह भी बड़े पैमाने पर, बड़े विस्तार और सावधानीपूर्वक पूर्णता के साथ? उसकी आध्यात्मिक और दार्शनिक प्राप्ति के बारे में सचमुच कोई प्रश्न नहीं हो सकता... लेकिन अगर उसके दर्शन, उसके धार्मिक अनुशासन, उसके महान् आध्यात्मिक व्यक्तियों की सूची, उसके विचारकों, संस्थापकों, सन्तों की सूची उसकी महानतम महिमा है, जैसा कि उसके स्वभाव और शासक विचार के लिए स्वाभाविक था, ये उसकी एकमात्र महिमा नहीं हैं और न ही इनकी महिमा से दूसरे ठिगने हो जाते हैं। अब यह प्रमाणित हो गया है कि आधुनिक काल से पहले वह यूरोप के किसी भी देश से भौतिक विज्ञान में आगे था और यूरोप भी भौतिक विज्ञान में भारत का उतना ही ऋणी है जितना यूनान का, यद्यपि सीधी तरह से नहीं बल्कि अरबों के द्वारा। अगर वह केवल इतनी ही दूर गया होता तो यह भी प्राचीन संस्कृति में शक्तिशाली बौद्धिक जीवन का पर्याप्त प्रमाण होता। विशेष रूप से गणित, ज्योतिष और रसायन में जो प्राचीन विज्ञान के मुख्य तत्त्व थे, उसने बहुत-सी चीज़ों की खोज की और उन्हें अच्छी तरह सूत्रबद्ध किया, विवेचन और परीक्षण की शक्ति द्वारा ऐसे वैज्ञानिक विचारों और खोजों का पहले से ही पता लगा लिया जिन तक यूरोप बहुत बाद में पहुँच पाया, लेकिन यूरोप अपनी नूतन और पूर्णतर पद्धतियों के द्वारा उन्हें ज़्यादा दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित कर पाया। भारत शल्य-क्रिया-शास्त्र में भली-भाँति सुसज्जित था और उसका चिकित्सा-शास्त्र आज भी मूल्यवान् बना हुआ है, यद्यपि बीच में ज्ञान में उसका ह्रास हो गया था पर आज वह फिर से अपनी प्राण-शक्ति को प्राप्त कर रहा है।

साहित्य में, मानसिक जीवन में उसने महान् जीवन-यापन किया और निर्माण किया। उसके पास केवल वेद, उपनिषद् और गीता ही नहीं बल्कि उस क्षेत्र में कम उत्कृष्ट फिर भी शक्तिशाली और सुन्दर कृतियाँ पायी जाती हैं। धार्मिक और दार्शनिक काव्य का वह अद्वितीय स्मारक... वह महान् राष्ट्रीय भवन, महाभारत जो अपने अध्यायों में काव्यमय साहित्य को लिये हुए है और जो इतने पूर्ण रूप से महान् निर्माण-काल के जीवन को

प्रकट करता है, उसके बारे में पूर्ण न्याय के साथ उपयुक्त सूक्ति चलती है कि जो इस भारत (महाभारत) में नहीं है वह भारत देश में भी नहीं है। और रामायण, अपने ढंग की महानतम और सर्वोत्कृष्ट कविता, वह नैतिक आदर्शवाद और शूरताभरा अर्ध दिव्य-मानव जीवन का उत्कृष्टतम और सुन्दर महाकाव्य, और कविता की वह अद्‌भुत समृद्धि, पूर्णता और रंग और बहुत अधिक सुसंस्कृत विचार, ऐन्द्रिय आनन्द, कल्पना, कर्म और साहस-कार्य का वह रोमांस जो भारत के साहित्यिक युग का रूमानी साहित्य बनाता है। सृजन का यह दीर्घ निरन्तर ओज संस्कृत भाषा की प्राण-शक्ति के ह्रास के कारण रुका नहीं बल्कि उसकी अन्य भाषाएँ भी महान् और सुन्दर कृतियों के साथ सादृश्य में बढ़ती रहीं, पहले पाली और फिर प्राकृत में—(दुर्भाग्यवश इनमें से बहुतेरी चीज़ें नष्ट हो गयीं) फिर तमिल, हिन्दी, बंगला, मराठी तथा अन्य भाषाओं में। उसके स्थपत्य, वास्तुकला और चित्रकला की लम्बी परम्परा अपनी बात अपने-आप कहती है, सारे विनाश और तूफ़ानी सदियों के बाद जो कुछ बच रहा है वह कम-से-कम एक लगातार रचनात्मक क्रियाशीलता की गवाही देता है। निर्माण जीवन का प्रमाण है और महान् निर्माण जीवन की महानता का प्रमाण।

परन्तु कहा जा सकता है कि ये चीज़ें मन और बुद्धि की चीज़ें हैं। हो सकता है कि भारत की बुद्धि, कल्पना और सौन्दर्य-बोधात्मक मन रचनात्मक दृष्टि से सक्रिय रहे हों पर उसका बाह्य जीवन उदास, मन्द, दुःखी और धुँधला रहा हो जिस पर तपस्या की रंगत हो, जो इच्छा-शक्ति और व्यक्तित्व से विहीन, प्रभावहीन और शून्य के समान हो। परन्तु इस बात को गले से उतारना कठिन है क्योंकि साहित्य, कला और विज्ञान रिक्त जीवन में नहीं पनपते। परन्तु यहाँ भी तथ्य क्या है? भारत में न केवल महान् सन्तों, साधुओं, विचारकों, धर्म-प्रतिष्ठापकों, कवियों, सर्जकों, वैज्ञानिकों, विद्वानों, विधायकों की ही लम्बी पंक्ति रही बल्कि उसमें महान् शासक, सञ्चालक, सैनिक, विजेता, शूरवीर और बलवान् सक्रिय इच्छा-शक्तिवाले पुरुष, ऐसे मनवाले भी थे जो योजना बनाते थे, जिनमें देखने और निर्माण करने की शक्ति थी। उसने युद्ध भी किये और शासन भी किया, व्यापार भी किया और उपनिवेश भी बसाये तथा अपनी सभ्यता का प्रचार भी किया, राज्यतन्त्र का निर्माण किया तथा जातियों और प्रजाओं को संगठित भी

किया, उसने वह सब कुछ किया जो महान् जातियों के बाह्य क्रिया-कलाप में लक्षित होता है। कोई भी राष्ट्र अपने अन्दर से उन ओजस्वी वृत्तियों को बाहर प्रकट करने के लिए प्रवृत्त होता है जो उसके स्वभाव के साथ मेल खाती हैं और उसके प्रमुख विचार को अभिव्यक्त करती हैं। भारत के मूर्धन्य स्थान पर महान् सन्त और धार्मिक व्यक्ति दिखायी देते हैं जो महानता की सबसे अधिक आश्चर्यजनक और अविरत गौरवान्वित पंक्ति को प्रस्तुत करते हैं, उसी तरह जैसे रोम अधिकतर अपने योद्धाओं, राजनेताओं और शासकों में जीवित दिखायी देता था। प्राचीन भारत में ऋषि सबसे आगे थे और शूरवीर उनके पीछे, जब कि बाद के काल में सबसे अधिक ध्यान खींचने वाली पंक्ति में थे बुद्ध और महावीर, रामानुज, चैतन्य, नानक, रामदास, तुकाराम और उनके बाद रामकृष्ण, विवेकानन्द और दयानन्द। इनमें महान् शासक और राजनेता भी इतिहास में अपना स्थान बना कर गये। ऐसे इतिहास की प्रथम उषा से जिसकी जाँच की जा सकती है ऐसे प्रभावशाली व्यक्तित्व उभरते हैं जैसे चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक तथा अन्य गुप्तवंशीय सम्राट् और प्रसिद्ध हिन्दू तथा मुस्लिम आकृतियों से होता हुआ इतिहास मध्ययुग से आधुनिक काल तक चला आ रहा है। प्राचीन भारत में गणतन्त्र, कुलीनतन्त्र, प्रजातन्त्र और ऐसे छोटे-छोटे राज्य थे जिनके इतिहास की विस्तृत सूचनाएँ नहीं मिलतीं, उसके बाद आये साम्राज्य बनाने वालों के लम्बे प्रयास, लंका और आर्कीपेलागो के उपनिवेशीकरण, वे स्पष्ट संघर्ष जिनके साथ पठान और मुग़ल राज्यों के उत्थान और पतन हुए, दक्षिण में हिन्दुओं के अपने-आपको बचाये रखने के संघर्ष हुए, राजपूत-शौर्य के अद्‌भुत कारनामे और महाराष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन का महान् उत्पात हुआ जिसने समाज के निम्नतर स्तरों तक प्रवेश किया, सिख खालसा का अद्‌भुत उपाख्यान आया। उस बाहरी जीवन का उचित चित्र देना अभी तक बाक़ी है, एक बार यह दे दिया जाये तो बहुत-सी दन्त-कथाओं का अन्त हो जायेगा।

'लाल कमल' पुस्तक से —रवीन्द्रजी

साहसी, सहनशील और ईमानदार होकर ही तुम अपने देश की अधिकाधिक सेवा कर सकते, उसे संसार में महान् बना सकते हो। **श्रीमाँ**

क्षमा का आदर्श

चन्द्रमा धीरे-धीरे काले बादलों की गोद से लुकता-छिपता निकल रहा था। नीचे नदी कलकल शब्द करती हुई वायु के संग सुर में सुर मिलाती हुई, नाचती, बल खाती बही चली जा रही थी। कहीं चाँदनी छिटकी थी, कहीं अँधेरा छाया था। बड़ा ही सुन्दर दृश्य था।

चारों ओर ऋषियों के आश्रम थे। एक-एक आश्रम नन्दनवन को मात करता था। हर एक ऋषि की कुटिया फूलों के पेड़ों और बेलों से घिरी थी। अद्‌भुत श्रीशोभा थी वहाँ की! ऐसी ही एक रात थी जब चाँदनी छिटकी हुई थी। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ अपनी सहधर्मिणी अरुन्धती से कह रहे थे, "देवि! ऋषि विश्वामित्र के यहाँ जाकर ज़रा-से नमक की भीख माँग लाओ।"

इस बात से विस्मित होकर अरुन्धती ने कहा, "प्रभु, यह कैसी आज्ञा दी आपने, मैं तो कुछ भी न समझ पायी। जिसने मुझे सौ पुत्रों से वञ्चित किया..." कहते-कहते उनका गला भर आया। पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। वह अपूर्व शान्ति का धाम हृदय की व्यथा से भर गया।

उन्होंने कहा, "मेरे सौ बेटे ऐसी ही ज्योत्स्ना-शोभित रात्रि में वेद-पाठ करते फिरते थे। मेरे सौ-के-सौ पुत्र वेदज्ञ और ब्रह्मनिष्ठ थे। जिसने मेरे उन सौ पुत्रों को नष्ट कर दिया आप उसी के आश्रम से लवण की भिक्षा माँग कर लाने के लिए कह रहे हैं? किंकर्तव्यविमूढ़ मैं कुछ नहीं समझ पा रही।

धीरे-धीरे ऋषि के चेहरे पर एक प्रकाश आता गया। धीरे-धीरे सागर-गभीर हृदय से यह वाक्य निकला, "लेकिन, देवि, मुझे उससे प्रेम है।"

अरुन्धती और भी चकरा गयीं। उन्होंने कहा, "आपको उनसे प्रेम है तो एक बार 'ब्रह्मर्षि' कह दिया होता। इससे सारा जंजाल मिट जाता और मुझे अपने सौ पुत्रों से हाथ न धोने पड़ते।"

ऋषि के मुख पर एक अपूर्व श्रीशोभा दिखायी दी। उन्होंने कहा, "मुझे उससे प्रेम है, इसीलिए उसे ब्रह्मर्षि नहीं कहता। मैं उसे ब्रह्मर्षि नहीं कहता इसीलिए उसके ब्रह्मर्षि होने की आशा है।"

आज विश्वामित्र क्रोध के मारे ज्ञान-शून्य हैं। तपस्या में उनका मन नहीं लग रहा। उन्होंने निश्चय किया है कि आज भी वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि न कहें तो उनके प्राण ले लेंगे। अपना संकल्प पूरा करने के लिए वे हाथ

में तलवार लेकर कुटी से बाहर निकले, वशिष्ठदेव की कुटीर के पास आकर खड़े हो गये। वहीं खड़े-खड़े उन्होंने वशिष्ठ की सारी बातचीत सुन ली। तलवार की मूठ पर हाथ की पकड़ ढीली हो गयी। मन में सोचा, "आह! क्या कर डाला! बिना जाने कितना अन्याय कर डाला मैंने! बिना जाने किसके निर्विकार चित्त को व्यथा पहुँचाने की कोशिश की!" हृदय में सैकड़ों बिच्छुओं के काटने की व्यथा होने लगी। पश्चात्ताप से हृदय जल उठा। दौड़े-दौड़े गये और वशिष्ठ के चरणों पर गिर पड़े।

कुछ देर तक मुँह से बोल न फूटे। अपने आपे में आये तो विश्वामित्र ने कहा, "क्षमा कीजिये, यद्यपि मैं क्षमा की भीख पाने के अयोग्य हूँ।" और कोई शब्द मुँह से न निकला। इधर वशिष्ठ ने क्या किया? दोनों हाथों से उन्हें पकड़ कर उठाते हुए बोले, "उठो, ब्रह्मर्षि, उठो।"

लज्जा से पानी-पानी हो विश्वामित्र बोले, "प्रभो, क्यों लज्जित करते हैं?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया, "मैं कभी झूठ नहीं बोला करता। आज तुम ब्रह्मर्षि बन गये हो, आज तुमने अभिमान त्याग दिया है। आज तुमने ब्रह्मर्षि-पद पाया है।"

विश्वामित्र ने कहा, "आप मुझे कृपया ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिये।"

"अनन्तदेव (शेषनाग) के पास जाओ, वे ही तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देंगे।" वशिष्ठ ने उत्तर दिया।

विश्वामित्र वहाँ जा पहुँचे जहाँ अनन्तदेव पृथ्वी को मस्तक पर धारण किये हुए हैं। अनन्तदेव ने कहा, "मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा तभी दे सकता हूँ जब तुम इस पृथ्वी को अपने सिर पर धारण कर सको जिसे मैं धारण किये हुए हूँ।"

तपोबल के गर्व में विश्वामित्र ने कहा, "आप पृथ्वी को छोड़ दीजिये, मैं उसे मस्तक पर धारण कर लूँगा।"

अनन्तदेव ने कहा, "अच्छा तो लो, मैं छोड़े देता हूँ।" और पृथ्वी घूमते-घूमते गिरने लगी।

विश्वामित्र ने पुकार कर कहा, "मैं अपनी सारी तपस्या का फल देता हूँ। पृथ्वी, रुक जाओ।" फिर भी पृथ्वी स्थिर न हो पायी।

अनन्तदेव ने उच्च स्वर में कहा, "विश्वामित्र! पृथ्वी को धारण करने

के लिए तुम्हारी तपस्या काफ़ी नहीं है। तुमने कभी साधु-संग किया है? उसका फल अर्पण करो।"

विश्वामित्र बोले, "क्षण-भर के लिए वशिष्ठ के साथ रहा हूँ।"

अनन्तदेव ने कहा, "तो उसी का फल दे दो।"

विश्वामित्र बोले, "अच्छा, उसका फल अर्पित किया।"

और धीरे-धीरे धरती स्थिर हो गयी।

तब विश्वामित्र ने कहा, "देव, अब मुझे ब्रह्मज्ञान दें।"

अनन्तदेव ने कहा, "मूर्ख विश्वामित्र! जिसके क्षण-भर के सत्संग का फल देकर तुम समस्त पृथ्वी को धारण कर सके, उसे छोड़ कर मुझसे ब्रह्मज्ञान माँग रहे हो?"

विश्वामित्र नाराज़ हो गये। उन्होंने सोचा, "इसका मतलब यह है कि वशिष्ठ मुझे ठग रहे थे।"

वे तेज़ी से वशिष्ठ के यहाँ जा पहुँचे और बोले, "आपने मुझे इस तरह क्यों ठगा?"

वशिष्ठ ने अत्यन्त धीर-गम्भीर भाव से उत्तर दिया, "अगर मैं उसी समय तुम्हें ब्रह्मज्ञान दे देता तो तुम्हें विश्वास न होता, इस अनुभव के बाद तुम विश्वास करोगे।"

विश्वामित्र ने वशिष्ठ के निकट ब्रह्मज्ञान की शिक्षा पायी।

भारत में ऐसे-ऐसे ऋषि, ऐसे-ऐसे साधु थे, हमारे यहाँ क्षमा का ऐसा आदर्श था। तपस्या का ऐसा बल था जिसके द्वारा समस्त पृथ्वी को धारण किया जा सके। भारत में फिर से ऐसे ऋषि जन्म ग्रहण कर रहे हैं जिनकी प्रभा के आगे प्राचीन ऋषियों की ज्योति फीकी होगी, जो भारत को फिर प्राचीन गौरव की अपेक्षा अधिक गौरवमय स्थान पर प्रतिष्ठित करेंगे।

(श्रीअरविन्द की एक बंगला कहानी का अनुवाद)

... व्यक्ति को भगवान् से एक अस्पष्ट प्रकार की शाब्दिक क्षमा नहीं माँगनी चाहिये, बल्कि आवश्यक उन्नति करने के लिए शक्ति माँगनी चाहिये। कारण, केवल आन्तरिक रूपान्तर ही किये हुए कर्म के परिणामों को मिटा सकता है। श्रीमाँ

दैनन्दिनी

सितम्बर

१. विजय की निश्चिति हमारे विश्वास की सच्चाई में होती है।

२. ग़लत चीज़ों की कल्पना करना बन्द कर दो तो साथ ही तुम्हारे कष्ट समाप्त हो जायेंगे।

३. सत्य परम सामञ्जस्य और परम आनन्द है।

४. मन जितना अचञ्चल होगा, दृष्टि उतनी ही अच्छी होगी।

५. सत्य-चेतना उन्हीं में अभिव्यक्त हो सकती है जो अहंकार से मुक्त हों।

६. एक ऐसी चेतना है जिसे कोई चीज़ भ्रष्ट, भद्दा या दूषित नहीं कर सकती। यही वह चीज़ है जिसे हम 'भागवत चेतना' कहते हैं।

७. नम्रता और सच्चाई सबसे अच्छे रक्षक हैं। उनके बिना एक-एक पग ख़तरनाक है, उनके साथ विजय निश्चित है।

८. जानना और सहन कर सकना और डटे रह सकना—ये चीज़ें निस्सन्देह अचल-अटल आनन्द लाती हैं।

९. सरल और निष्ठावान् हृदय महान् वरदान है।

१०. धन की हानि कम महत्त्व रखती है परन्तु सन्तुलन की हानि बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ है।

११. हर्ष तब आता है जब तुम उचित वृत्ति अपनाओ।
हर्ष भागवत आदेश के आगे झुकने से आता है।
एक बार तुम्हें आन्तरिक जीवन के हर्ष का चस्का लग जाये तो फिर तुम्हें कभी कोई और चीज़ सन्तुष्ट न करेगी।

१२. हमारे मन को नीरव और शान्त होना चाहिये, परन्तु हमारे हृदय को तीव्र अभीप्सा से भरा होना चाहिये।

१३. सचमुच शान्ति की बड़ी सख़्त ज़रूरत है—शान्ति के बिना सरल-से-सरल बात भी बड़ी गड़बड़ पैदा करती है।

१४. अगर तुम संसार में ऐक्य चाहते हो तो पहले अपनी सत्ता के विभिन्न भागों को एक करो।

१५. शोक का कारण मनुष्य का अज्ञान और अहंभाव होता है।

१६. परम प्रभु ने धरती को बचाने के लिए उसमें अपनी कृपा भेजी है।

१७. जो **शुद्ध** हैं, यानी ऐकान्तिक रूप से भागवत प्रभाव में हैं, उन्हें कोई डर नहीं होता।

१८. घोर तपस्या की अपेक्षा सच्चा प्रेम और निवेदन भगवान् की ओर कहीं ज़्यादा तेज़ी से ले जाते हैं।

१९. सब प्रकार की अव्यवस्था और सब दुःख-कष्ट 'असत्य' हैं।

२०. प्रेम सबके साथ है, प्रत्येक की प्रगति के लिए समान रूप से कार्य कर रहा है—लेकिन विजय उन्हीं में पाता है जो उसकी परवाह करते हैं।

२१. कभी चिन्ता न करो, तुम जो करो सच्चाई के साथ करो और परिणाम भगवान् की देखरेख में छोड़ दो।

२२. स्पष्ट समझ, अन्तर्दर्शन और उचित क्रिया के लिए एक बहुत-बहुत स्थिर, शान्त मस्तिष्क अनिवार्य है।

२३. सत्य है परम समस्वरता और परम आनन्द।

२४. आन्तरिक और बाहरी अनुशासन के बिना जीवन में तुम कुछ भी नहीं पा सकते, न तो आध्यात्मिक तौर पर, न जड़-भौतिक तौर पर। वे सब जो किसी सुन्दर या उपयोगी चीज़ का सृजन करने में सफल हुए हैं, वे ऐसे लोग थे जो अपने-आपको अनुशासित करना जानते थे।

२५. मैं केवल अज्ञान, निश्चेतना तथा अहंकार की सीमाओं के त्याग की माँग कर रही हूँ, लेकिन कितने अद्‌भुत, अतुलनीय लाभ के बदले।

२६. मानवजाति जिस भयंकर दुर्दशा में धँसी हुई है उससे चेतना के आमूल परिवर्तन के सिवा उसे कोई नहीं बचा सकता।

२७. धीरज के साथ नीरवता के पीछे लगे रहो, तो तुम पूर्ण परिपूर्ति और सतत प्रकाशमान शान्ति की निश्चिति पाते हो।

२८. सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ है शान्त सहिष्णुता जो तुम्हारी प्रगति में किसी गड़बड़ या अवसाद को हस्तक्षेप नहीं करने देती। विजय का आश्वासन है, अभीप्सा की सच्चाई।

२९. मेधावी मनुष्य को उत्साह, अप्रमाद, संयम द्वारा अपने लिए ऐसे द्वीप का निर्माण करना चाहिये जिसे कोई बाढ़ डुबा न पाये।

३०. वर्तमान अन्धकार के बावजूद भारत का भविष्य ज्योतिर्मय है।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

हमारे लिए मार्ग खोल दिया गया है

माताजी ने कहा है कि पूर्णयोग का लक्ष्य है दिव्य पूर्णता, मानव पूर्णता नहीं। मानव पूर्णता में केवल आज नहीं शताब्दियों से बहुत से ऐसे व्यक्ति होते आये हैं जो हमसे कहीं अधिक पूर्ण हैं। आज हम *लिओनार्दो द विंची* होने का स्वप्न भी नहीं देख सकते। आज हम उस जैसी पूर्णता का स्वप्न भी नहीं देख सकते। बहुत से इंजीनियर, कलाकार, स्थपति अपने-अपने क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं, कुछ आध्यात्मिक दृष्टि से भी। तो अगर हम पृथ्वी पर दिव्य पूर्णता पाना चाहें, दिव्य पूर्णता में दिव्य ज्ञान पाना चाहें तो हमारी चेतना का भागवत समन्वय अनिवार्य है। और इसके लिए आन्तरिक स्तरों और सत्ता के भागों का ज्ञान और भी ज़्यादा अनिवार्य है।

श्रीअरविन्द ने हमारे लिए जो विशाल ज्ञान छोड़ा है, ये सब उसकी कुछ झाँकियाँ हैं। सचमुच जानकारी के लिए गहराई में उनका अध्ययन करना होगा जिसमें बहुत समय लगेगा। यह कुछ दिनों में होने वाला काम नहीं है। इस ज्ञान के बिना हम अज्ञान का जीवन जीते रहेंगे।

माताजी और श्रीअरविन्द ने हमारे लिए मार्ग खोल दिया है, केवल मानसिक मार्ग नहीं बल्कि आन्तरिक और सत्ता के भागों का चैत्य मार्ग भी। उनके बारे में सचेतन होने के लिए हमें क्या करना चाहिये? पहले हमें अपने मन को नीरव करना और फिर अवलोकन करना चाहिये। तुम्हें अपने मन को नीरव बनाने के लिए संघर्ष करने की ज़रूरत नहीं है। कुछ लोगों ने श्रीअरविन्द से पूछा, "शुद्ध हुए बिना हम अनुभूतियाँ कैसे पा सकते हैं?" उन्होंने कहा कि उनका अनुभव और तरह का था। उन्होंने पहले ध्यान के द्वारा उपलब्धि पायी और बाद में परिणाम-स्वरूप शुद्धि शुरू हुई और यह शुद्धि—या तुम उसे जो चाहो कह लो—उच्चतर स्तरों के अवतरण से आयी। जब ध्यान किया तो अवतरण हुआ और अवतरण ने शोधन किया।

हम एक ऐसे गुरु के शिष्य हैं जिन्होंने न केवल इतने बड़े विशाल क्षेत्र खोल दिये हैं जो पहले कभी न खुले थे बल्कि जो आज भी हमारे साथ उपस्थित हैं। अपना शरीर त्यागने के बाद श्रीअरविन्द हमारे और भी

नज़दीक आ गये। आज हममें से हर एक उनके साथ एकात्म हो सकता है और अगर हम उनके साथ एकात्म हो सकें तो हमें जो ज्ञान प्राप्त हो सकेगा वह और कहीं से नहीं मिल सकता। अगर हम उनके साथ एक हो सकें और फिर उनकी पुस्तकें पढ़ें तो हम कहेंगे, "हाँ, मुझे यह अनुभूति पहले ही हो चुकी है, इसे तो मैं जानता हूँ, पर यहाँ इन्होंने बहुत स्पष्टता से वर्णन किया है।"

हाँ, तो हमें नीरवता का अभ्यास करना चाहिये। नीरवता आत्मावलोकन से भी आती है। अगर तुम अपने-आपसे कहो, चलो देखें ये विचार कहाँ से आते हैं तो तुम्हें यह देख कर आश्चर्य होगा कि तुम्हारा मन एकदम मौन हो गया है। तुम भले पन्द्रह मिनट बैठे रहो पर एक विचार भी नहीं आयेगा क्योंकि विचारों के अवलोकन ने ही तुम्हें विचारों की धारा से बाहर कर दिया है। विचार मोटरों और प्यादों-जैसे हैं। यदि तुम सड़क के बीच में से चल रहे हो तो मोटरों से टक्कर ज़रूर हो सकती है। लेकिन तुम अपने घर में बैठे हो तो तुम उनकी पहुँच के बाहर होते हो। उसी तरह से यदि तुम अपना अवलोकन शुरू कर दो तो तुम मानसिक विचारों की पहुँच से बाहर होते हो।

चैत्य को खोजने की प्रक्रिया भी कुछ ऐसी ही है। तुमको हर रोज़ अपनी चेतना को इकट्ठा करना चाहिये और उसे सिर से हृदय तक इकट्ठा करना चाहिये, पैरों से हृदय तक इकट्ठा करना चाहिये, अपने हाथों से हृदय तक इकट्ठा करना चाहिये और फिर अन्दर जाना चाहिये। तुमको यह **संकल्प** करना चाहिये कि तुम अपने चैत्य को पाना चाहते हो। संकल्प यन्त्र है, संकल्प ही अग्नि है और वही तपस्या है। अधिकतर लोग मानव संकल्प का उपयोग नहीं करना जानते। मैंने देखा है कि जिन लोगों ने योग अपनाया है वे भी संकल्प का महत्त्व नहीं जानते। अगर तुम साढ़े तेईस घण्टे तो संकल्प से काम न लो और फिर आधे घण्टे तक उसका उपयोग करो तो काम न चलेगा। संकल्प सारे समय तुम्हारे अधिकार में होना चाहिये। उसी तरह चेतना भी होनी चाहिये। बुद्ध ने कहा था, "मैंने अपनी चेतना को अपने चारों ओर इस्पात की तरह बना लिया है।"

पहले हमारे अन्दर मानसिक समझ होनी चाहिये। फिर आध्यात्मिक अनुभूति होनी चाहिये, उसके बाद आन्तरिक स्तरों का उद्घाटन होना

चाहिये और अन्त में हमें उन्हें भौतिक स्तर में प्रवाहित करना चाहिये। एक कलाकार अपनी कला में उच्चतर स्तरों को प्रवाहित कर सकता है और एक गृहिणी अपने घर के काम-काज में। श्रीअरविन्द इन दोनों में कोई भेद नहीं करते। यह जानना बहुत मज़ेदार है कि भावी विकास में स्तरों का यह ज्ञान और सत्ता के भागों की जानकारी हमारे दैनिक जीवन में प्रकट होगी। लेकिन कैसे? भविष्य में यह कहने की जगह कि यह वह राग गा रहा है, हम कहेंगे कि इसकी प्रेरणा ज्योतिर्मय मन से या अधिमन से आ रही है, राग तो सभी गा लेते हैं, एक ही राग दो व्यक्ति दो स्तरों से गा सकते हैं। जब हम उच्चतर स्तरों से गाते हैं तो राग का निर्माण करते हैं। (क्रमशः)

—नवजातजी

पैसा

आजकल चारों ओर पैसे का ही राज्य है। कन्नड़ भाषा के कवि श्री कुवेम्पु अपनी एक कविता में एक छोटे-से बच्चे के मुख से उसकी महिमा के बारे में प्रश्न करते हैं। बच्चा अपनी माँ से पूछता है—माँ, सब लोग भाई से क्यों कहते रहते हैं कि पैसा कमाओ, पैसा कमाओ। हम जिस धूल से खेलते हैं, पैसा उससे भी सुन्दर है क्या?

बता माँ, वह धूल की न्याईं चिकना है? क्या वह धूल की तरह मुलायम और छोटा है?

माँ, क्या वह धूल की तरह हवा में उड़ सकता है? क्या वह धूल की तरह सब लड़कों के पास आ-जा सकता है? क्या वह सब लड़कों को सहला सकता है? सब बच्चों के साथ प्यार कर सकता है?

माँ, बता, क्या वह सूर्य की बाल-छवि के सौन्दर्य से बढ़ कर है? हरीतिमा से, हरे-भरे पौधों से रोज़ हम जो फूल चुन कर लाते हैं उनसे भी बढ़ कर है क्या वह पैसा?

बोल माँ, क्या वह इन्द्रधनुष की तरह हमारे मन को मोहित कर सकता है? वर्षा की बूँदों की तरह हमें नाच नचा सकता है?

क्या वह हिमार्द्र पल्लवों पर खेलते हुए तुहिन-कणों से भी सुन्दर है? फूलते-फलते चैत्र काननों में कूकने वाली कोकिल के कण्ठ से अधिक मधुर है? कह दे माँ, उसमें वह माधुर्य है क्या?

—कुवेम्पु

भारत भारत बने

श्रीअरविन्द ने कहा है कि भारत को स्वयं अपनी और सारी मनुष्यजाति की सेवा करनी है और इसके लिए सबसे पहली ज़रूरत इस बात की है कि वह सचमुच भारत बने और अपनी प्रकृति के अनुसार चले। इसका यह मतलब नहीं है कि हम हर नयी चीज़ से कतराएँ या जो भी चीज़ पहले पश्चिम में प्रकट हुई हो उससे कन्नी कटाएँ। ऐसा करना एकदम असम्भव और मूर्खतापूर्ण होगा। सच्ची आध्यात्मिकता किसी नये प्रकाश से या मनुष्य के विकास की सामग्री से नहीं घबराती। सच्चा भारतीय बनने का अर्थ यही है कि हम अपने जीवन के केन्द्रों को न भूलें, अपने सच्चे धर्म पर, अपनी सच्ची प्रकृति पर दृढ़ रहें और बाहर से जो कुछ आये उसे हज़म करके अपना अंग बना सकें और उसी के आधार पर अपना भविष्य गढ़ें। भारत की सच्ची प्रकृति क्या है, उसे मनुष्यजाति के लिए क्या करना है, वह किस शक्ति का प्रतीक है—यह सब उसके इतिहास में लिखा हुआ है। हमारी आज की कठिनाइयों और अग्निपरीक्षाओं का कारण भी हमें वहीं दिखायी दे सकता है।

भारतीय संस्कृति का असली तत्त्व बहुत अधिक ऊँचा और महान् है। मनुष्य की आत्मा इससे ऊँचे तत्त्व की बात नहीं सोच सकती। हमारी संस्कृति मनुष्य को उसकी अधिक-से-अधिक विशाल, गुह्य और उच्चतम सम्भावनाओं तक पहुँचाना चाहती है। वह सारे जीवन को शाश्वत काल में, व्यक्ति में विश्वपुरुष की, सान्त में अनन्त की, मानव में भगवान् की एक गति के रूप में देखती है। उसका कहना है कि मनुष्य अनन्त और शाश्वत की अनुभूति प्राप्त कर सकता है, केवल इतना ही नहीं, उसी की शक्ति में निवास करके आत्म-ज्ञान के द्वारा अपने-आपको सार्वभौम, आध्यात्मिक और दिव्य बना सकता है। जीवन का इससे बड़ा उद्देश्य क्या हो सकता है कि मनुष्य भगवान् का साक्षात्कार करे और उनके ज्ञान, उनकी चेतना और उनके आनन्द के साथ एक हो सके। भारतीय संस्कृति बस यही चाहती है।

लेकिन चाहना एक बात है और होना दूसरी। हमें अपने विचारों पर और अपने सामाजिक ढाँचे पर एक तेज़ दृष्टि डाल कर इस बात का पता लगाना चाहिये कि हमारी प्राचीन भावना कहाँ खो गयी, हम कहाँ ठोकर

खा गये। उनमें से बहुत-सी चीज़ों ने पौराणिक गाथाओं का रूप ले लिया है और आजकल के जीवन के साथ बिलकुल मेल नहीं खातीं। कुछ हैं जो अपने समय में अपने स्थान पर चाहे जितनी उपयोगी रही हों पर हमारे आज के विकास में सहायक नहीं हो सकतीं। हमें इन सबको छोड़ना या बदलना होगा। आज हमें जिस नये सत्य की खोज है वह पुराने आदर्शों की लीक पीटने वाला न होगा। हमें उनके ऊपर आध्यात्मिक किरण डाल कर यह जाँच करनी होगी कि उनका कौन-सा अंश रखने-योग्य है और कौन-सा त्याग देने-योग्य। हर पुरानी चीज़ रखने-योग्य या हर पुरानी चीज़ त्यागने योग्य नहीं कही जा सकती। हम जो कुछ भी करें वह भारत की प्रकृति के साथ समस्वर होना चाहिये।

हमारे अन्दर भारतीय संस्कृति की भावना के लिए, भारत की आत्मा के लिए श्रद्धा होनी चाहिये पर साथ ही साथ एक प्राणवान्, धैर्यशील, उद्यमी, अध्यवसायी जीवन भी होना चाहिये और इसके साथ ही यह विश्वास भी होना चाहिये कि हमारा भूत चाहे कितना भी महान् क्यों न रहा हो, प्रभुकृपा से हमारा भविष्य उससे कहीं अधिक महान् और तेजपूर्ण होगा। जीवन का विकास ज़रूरी है, भूत और वर्तमान की उन्हीं चीज़ों का कुछ मूल्य हो सकता है जो अधिक उज्ज्वल भविष्य बनाने में सहायता कर सकें। जो कुछ भी उसके मार्ग में बाधक हो वह अपने-आपमें महान् होते हुए भी त्याग देने-योग्य है। हम भूतकाल के रूप और आकार के साथ बँधे नहीं रह सकते। उनकी आत्मा को सुरक्षित रखते हुए आकार आदि को बदलना ही होगा। आध्यात्मिक सत्य ही हमारे लिए सबसे ऊँचा सत्य है। हम सबको मिल कर उसे प्राप्त करने के लिए कोशिश करनी चाहिये। आत्मा किसी रंग, रूप, आकार से बँधी नहीं रह सकती, वह नित्य नूतन, अमर और अविभाज्य है। उसे पाकर ही हम सच्चे भारतीय बन सकते हैं।

श्रीमाँ ने कहा है कि भारत को भविष्य के लिए कार्य करना चाहिये और आगे बढ़ना चाहिये। इस तरह वह फिर से संसार में अपने सच्चे स्थान को प्राप्त कर लेगा। बहुत दिनों से दुनिया में विभाजन और विरोध के द्वारा शासन करने की नीति चली आ रही है। अब समय आ गया है कि शासन एकता, पारस्परिक सद्बोध और सहयोग के द्वारा किया जाये।

'पुरोधा', नवम्बर १९७१ —रवीन्द्रजी

'ऋषिवर बोले' :

भारत की प्रगति का तरीक़ा

हम ऋषिवर के यहाँ पहुँचे तो देखा कि पहले से ही एक लड़की मौजूद थी। उसने हमसे ऋषिवर की बातें कई बार सुनी थीं। उसने मन में सोचा होगा, इन लड़कों में ऐसा कौन-सा सुरख़ाब का पर लगा है कि ये ही हर रोज़ पहुँच जाते हैं और फिर हमें ललचा कर ऋषिवर की बातें सुनाते हैं। चलो, आज लड़कियों का दल लड़कों से पहले जा पहुँचे। मारिया ने अपने साथ दो-चार लड़कियों को लेने की कोशिश की होगी, पर उनमें से किसी को या तो उत्साह न आया होगा या समय पर न आ पायी होंगी, इसलिए वह अकेली ही आ धमकी है।

ख़ैर, हम भी एक ओर बैठ गये। जब ज्ञानगोष्ठी चल रही हो तो ऋषिवर प्रणाम आदि को बाधा ही मानते हैं—आप भी इसका ख़याल रखें। हाँ, तो हमने जो कुछ सुना उससे यह अंदाज़ लगाया कि मारिया ने यही पूछा होगा कि देश की वर्तमान दुरवस्था देख कर आपको निराशा नहीं होती?

ऋषिवर कह रहे थे, "निराशा अज्ञान के कारण हुआ करती है। अगर हमें मालूम हो कि हमारे प्रयास का परिणाम ज़रूर अच्छा आयेगा तब फिर निराशा का क्या काम? मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि भारत का भविष्य निश्चित है। उसे सारे संसार का गुरु बनना है। सारे संसार का भावी ढाँचा भारत पर निर्भर है। भारत एक जीती-जागती आत्मा है और सारे संसार के लिए आध्यात्मिक ज्ञान को मूर्त रूप दे रहा है। जितनी जल्दी भारतवासी और भारत-सरकार इस बात को जान सकें उतना ही अच्छा होगा। भारत की आत्मा एक है, उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। राजनैतिक लोग भले हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बँटवारे कर लें, भले बंग-माता और कर्णाटक-माता की जय-जयकार करें, भारत-माता एक है और आज नहीं तो कल अपने बच्चों को भी एकता का पाठ पढ़ाने में सफल हो जायेगी। उसे अपने महान् कार्य का ज्ञान है, वह जानती है कि उसका पुराना वैभव फिर से आयेगा और सारे संसार का उद्धार करेगा। आज हमारे लिए सबसे बड़ा काम यही है कि हम भारत की आत्मा को जानें और उसे अपने जीवन

में, व्यक्ति के और समाज के जीवन में प्रकट करें।"

ऋषिवर ज़रा चुप हुए तो वह नयी लड़की बोल पड़ी, "लेकिन भगवन्, आज हमारा देश भूखा है, नंगा है, बीमार है। इन सब अवस्थाओं का इलाज करने की जगह आप आत्मा-परमात्मा की बातें सिखा रहे हैं। यह तो कुछ जँचा नहीं। 'भूखे भजन न होय गोपाला'।"

हम सबके तेवर चढ़ गये। प्रश्नकर्ता आज पहली बार आयी थी और आते ही ऋषिवर के सामने यह बदतमीज़ी! ऋषिवर ज़रा हँसे और बोले, "तुम्हारी बात ठीक है।"

हम सब ऋषिवर का मुँह ताकने लगे। उन्होंने फिर कहा, "भारत का एक बड़ा दुर्भाग्य यह है कि लोग समझते हैं कि भगवान् में और जीवन में विरोध है। पर यह बात सच्ची नहीं है। हम यह नहीं कहते कि तुम खेती-बाड़ी छोड़ दो, कल-कारख़ाने बन्द कर दो और माला लेकर बैठ जाओ। हम यह भी नहीं कहते कि सप्ताह में छह दिन जो चाहो करते रहो, सातवें दिन भगवान् को पुकार लो। हम तो यह कहते हैं कि भगवान् की पूर्णता से अपने जीवन को पूर्ण बनाओ। नंगे-भूखों का नाम रटने से, ग़रीबी की दुहाई देने से समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं। अपने हर काम को अच्छी-से-अच्छी तरह करने की कोशिश करो, उसे भगवान् का काम समझ कर उनके लिए करने की कोशिश करो, तब तुम्हारी मुसीबतें दूर हो जायेंगी। भगवान् पर श्रद्धा रख कर काम करना शुरू कर दो, तुम्हें कभी निराश न होना पड़ेगा। भारत को यह पाठ सारे जगत् को पढ़ाना है। भगवान् पर श्रद्धा रखो, उनकी शक्ति का आवाहन करो और अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखो। यही भारत की प्रगति का तरीक़ा है।"

ऋषिवर दम-भर के लिए रुक कर बोले, "और तुम ही हो देश के नौनिहाल जो भारत को संसार में उसके सच्चे पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर सकते हो।"

उन्होंने हम सब पर दृष्टि फेरी जो बिजली की कौंध की तरह हम पर छा गयी।

अपने देश के लिए कुछ ठोस, सार्थक कार्य करने का बीड़ा उठाये हमारी सभा उस दिन विसर्जित हुई।

—रवीन्द्रजी

इन्तज़ार में...

(श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र की भूतपूर्व छात्रा की कृति)

प्रिय बहना,

उम्मीद करता हूँ कि अब्बू, अम्मी, फ़ीरोज़ और तुम सलामत हो। तुम लोगों की याद मुझे यहाँ बहुत सताती है। न जाने यह जंग कब ख़तम होगी और मैं तुम सबको एक बार फिर देख पाऊँगा।

हमने जितना कश्मीर की सुन्दरता के बारे में सुना था, कश्मीर उससे भी कई गुना ख़ूबसूरत है। सच में, पृथ्वी पर अगर कोई जन्नत है तो वह यही है। यहाँ के ऊँचे-ऊँचे पर्वत, उन पर ठण्डी बरफ़, गहरे और शीतल तालाब हैं। यहाँ शान्ति पशु-पक्षियों की बोली में गूँजती है। पर फ़िलहाल लड़ाई के कारण केवल बन्दूकें और गोला-बारूद का ही शोर हो रहा है।

तुम मेरी फ़िकर मत करना। अल्लाह मियाँ को मेरी रक्षा करनी ही होगी। आख़िरकार तुम सबने उनसे मेरे लिए इतनी दुआएँ जो की हैं!

बहना, मेरे बाद घर में केवल तुम ही बड़ी हो। अब्बू और अम्मी बूढ़े हो चले हैं, उनका अच्छे से ध्यान रखना और फ़ीरोज़ से कहना कि वह ज़्यादा शैतानियाँ न करे। सबका और अपना ख़याल रखना।

तुम्हारा भाई
अमज़द

अमज़द आगरा का रहने वाला बाईस साल का नौजवान था। उसमें बुद्धि, बल और देश-प्रेम की कोई कमी न थी। घर का बड़ा बेटा होने के कारण घर की सारी ज़िम्मेदारी उसी के कन्धों पर थी। उस समय आतंकवादियों ने जम्मू और कश्मीर की कुछ वादियों पर हमला कर दिया था। भारतीय सेना को उन चोटियों को आतंकवादियों के चंगुल से छुड़ाने का आदेश मिला था। अमज़द भी उस लड़ाई में भारत माता के लिए लड़ रहा था।

जब अमज़द अपनी बहन को चिट्ठी लिख रहा था उसी समय उसका दोस्त रमेश तम्बू के अन्दर आया।

"अरे यह क्या? तुम्हें यहाँ आये दो दिन भी नहीं हुए और अभी से चिट्ठियाँ लिखना शुरू! चिट्ठियाँ लिखनी ही हैं तो अच्छी रौशनी में लिखो। एक मोमबत्ती का प्रकाश काफ़ी नहीं है।" अमज़द मुस्कुरा कर बोला, "रमेश, मैं अपने घरवालों को अन्धकार में भी चिट्ठी लिख सकता हूँ। उनके लिए मुझे इन आँखों की ज़रूरत नहीं।"

"अच्छा, अच्छा, करो जैसा तुम्हें ठीक लगे। मैं यहाँ तुम्हें यह बताने आया था कि हमारी बटालियन कल के बजाय अगले हफ़्ते पहली चोटी पर चढ़ाई करेगी।"

"अचानक यह देर क्यों?"

"हमारे बाक़ी साथियों ने ऐसा धावा बोला है कि सारे आतंकवादियों को उनकी नानी याद दिला दी।"

कुछ दिन पलक झपकते ही बीत गये। अमज़द ने अपनी बहन को दूसरी चिट्ठी लिखनी शुरू की।

प्यारी रुख़साना,

तुम सब कैसे हो? दूरदर्शन और अख़बारों में तुमने देख ही लिया होगा कि भारत ने तीन चोटियों पर जीत हासिल कर ली है। बस, अब कुछ ही दिनों की बात है और यह लड़ाई जल्द ही रुक जायेगी।

पता है, यह जंग ज़रूर हम जीतेंगे पर इस जंग में कितने बेक़ुसूरों का लहू बहा है। ये पहाड़ी नदियाँ जो पूरे भारत की प्यास बुझाती हैं उनमें पानी नहीं निर्दोषों का ख़ून बह रहा है। न जाने कितने घर अपना बेटा, भाई और पति खो चुके हैं।

क्या दूसरों को मार कर कोई कभी लड़ाई जीत पाया है? अगर ऐसा होता तो आज पृथ्वी पर कोई जीव जीवित ही न होता। न जाने कब लोगों की यह समझ में आयेगा।

तुम अपना और घर में सबका ध्यान रखना। मेरी चिन्ता बिलकुल मत करना। मेरी रक्षा तुम सबका प्यार कर रहा है।

तुम्हारा भाई
अमज़द

एक हफ़्ता देखते-ही-देखते बीत गया। पहले तो लग रहा था कि अमज़द की बटालियन को किसी चोटी पर चढ़ाई नहीं करनी पड़ेगी पर परिस्थितियाँ बदल गयीं। काफ़ी भारतीय सैनिक बहुत बुरी तरह से घायल हो गये थे। जल्द ही सैनिकों की आवश्यकता बढ़ गयी। रमेश और अमज़द एक दूसरे के साथ तम्बू के अन्दर बातें कर रहे थे।

"अमज़द, कितनी चिट्ठियाँ लिखोगे? इन्हें डाक के हवाले क्यों नहीं कर देते? वे तुम्हारी सारी चिट्ठियाँ तुम्हारे घरवालों तक पहुँचा देंगे।"

"नहीं रमेश। बड़ी मुश्किल से उन्होंने मेरा ख़याल अपने मन से निकाला होगा। अगर अब ये चिट्ठियाँ घर के दरवाज़े पर दस्तक देंगी तो उनके सब प्रयत्नों पर पानी फिर जायेगा। मेरी याद उन्हें फिर से सताने लगेगी। मेरे लिए उनका प्यार उन्हें एक बार फिर डर के अन्धकार में ढकेल देगा।"

"तो फिर तुम चिट्ठियाँ लिखते ही क्यों हो?"

"उनकी याद सदा अपनी आँखों के सामने रखने के लिए। पता नहीं, मैं घर वापस जा पाऊँगा कि नहीं। कम-से-कम ये चिट्ठियाँ तो उस घर को देख पायेंगी।"

"ऐसी बातें क्यों करते हो? तुम घर क्यों नहीं जाओगे? भारत ने जीत पा ली है। बस कुछ दिन और, और हम सब घर के लिए रवाना होंगे।"

उसी समय एक सिपाही तम्बू में आया और बोला, "हमारी बटालियन को कल सुबह तक दूसरी चोटी पर जाना है। सब अपना सामान बाँधो, हम अभी निकल रहे हैं।"

तुरन्त सब सूर्यास्त से पहले निकल गये। कच्ची सड़क थी और सबकी पीठ पर दस किलो का वज़न। कब कहाँ से गोली आ जाये किसी को नहीं पता था। तूफ़ानी हवा चल रही थी, चारों ओर अँधेरा था। किसी को नहीं मालूम था कि उनका अगला क़दम उनकी मौत भी बन सकता है। उस घोर अन्धकार में केवल एक ही रौशनी थी और वह थी उनकी उम्मीद और आशा की। उनको जीना है भारत माता के लिए, उनको जीना है अपने घरवालों के लिए। उन्होंने कभी हार नहीं मानी तो क्या आज मौत के आगे घुटने टेक देंगे? सबको आशा और पूरा विश्वास था कि भारत की ही जीत होगी और उसके लिए उन्हें ही लड़ना होगा दुश्मन से। रात के दस बजे वे पहली चोटी पर आ गये थे। बिना रुके वे दूसरी चोटी

के लिए रवाना हो गये। रात का सन्नाटा गोलियों और गोला-बारूद के शोर से भंग हो रहा था। शान्त और स्थिर आकाश में पटाख़ों की तरह बम फट रहे थे। कुछ ही देर में सब सुरक्षित दूसरी चोटी तक पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर आदेश मिला कि कुछ सिपाही दूसरी चोटी पर रहेंगे और कुछ तीसरी चोटी के लिए अगली शाम तक रवाना होंगे। अमज़द को आगे बढ़ने का हुक्म मिला था पर रमेश को वहीं रुकने का। भले ही आदेश अगली शाम को निकलने का था, बटालियन के मेजर ने सबको अगली सुबह ही तैयार रहने को कहा। कल रात वे दूसरी चोटी पर पहुँचेंगे, एक दिन का विश्राम और फिर से विदाई! उस विश्राम के समय अमज़द के हाथों में हमेशा की तरह एक क़लम और काग़ज़ था।

प्यारी बहना,

यह मेरी आख़िरी चिट्ठी है तुम्हारे लिए। इसके बाद मुझे अपना क़लम नीचे रखना होगा और अपनी बन्दूक सम्भालनी होगी। अब मेरी गोलियाँ ही उन-उनको चिट्ठी लिखेंगी जिन-जिनके पति या भाई या बेटे की मौत की वे ज़िम्मेदार बनेंगी।

न जाने यह जंग कब ख़तम होगी और मैं तुम सबको फिर से देख पाऊँगा। तब तक के लिए अपना और घर में सबका ख़याल रखना।

तुम्हारा भाई
अमज़द

चिट्ठी लिखते समय पहली बार अमज़द की आँखें भर आयीं। उसी समय रमेश आया।

"अरे, एक फ़ौजी की आँखें गीली कैसे हो गयीं?" "रमेश, तुम मेरी चिट्ठियाँ पढ़ने के लिए कहते थे न? ये लो मेरी सारी चिट्ठियाँ। कल मैं तुम्हें और इन्हें यहीं छोड़ कर जा रहा हूँ। मेरा वापस आना शायद मुमकिन न हो। एक बार जब युद्ध ख़तम हो जाये तो इन्हें इनके सही हक़दार को पढ़ के सुना देना। मेरे घर में मेरे सिवाय किसी को पढ़ना-लिखना नहीं आता।"

आख़िरी वाक्य सुनते ही रमेश का मुँह खुला-का-खुला रह गया।

अगले दिन सब भारत माँ की सेवा के लिए निकल पड़े। कई दिनों

तक आगे बढ़ने वालों की कोई ख़बर न आयी। आख़िरकार भारत की फिर से विजय हो गयी। जितने गिने-चुने सैनिक बचे थे वे लौट कर आ रहे थे। रमेश तो केवल एक के लौटने का इन्तज़ार बेताबी से कर रहा था। दूसरों से पूछने पर पता चला कि उसका इन्तज़ार कभी ख़तम नहीं होगा।

लड़ाई के बाद सबको अपने-अपने घर जाने की अनुमति मिल गयी थी। पर रमेश अपने घर जाने के बजाय सबसे पहले अपने दोस्त के घर गया।

वहाँ पर उसका बहुत प्रेम से स्वागत हुआ। पर उसका मन न जाने क्यों अपने-आपको उस प्रेम के योग्य नहीं समझ रहा था। आख़िरकार रमेश ने बिना और देर किये सब कुछ अमज़द के घरवालों को बता दिया। जो आँखें लड़ाई के समय उन चिट्ठियों को बेताबी से पढ़ना चाहती थीं वे अब उनको देखने से भी घबरा रही थीं। पर रमेश अपने दिये हुए वचन के कारण मजबूर था। एक-एक करके उसने सारी चिट्ठियाँ अमज़द के परिवारवालों को सुना दीं। आख़िरी चिट्ठी पढ़ते समय वह अपने आँसुओं को रोक न सका। घर में किसी ने विरोध नहीं किया। सब अपने आँसू चुपचाप पी गये। रुख़साना ने रमेश को अलविदा किया और दरवाज़े की चौखट पर बैठ कर उस रास्ते को देखती रही जहाँ से उसने अपने भाई को विदा किया था।

'पुरोधा', नवम्बर २००८ से —आयुषी शर्मा

'बेटी को पीहर पहुँचाना है'

ऐतिहासिक पिटारी से उझकती एक ठेठ भारतीय कहानी—

"कोई है?"

"जी सरकार!" महल के द्वार पर उपस्थित रक्षक ने महाराज के सम्मुख आकर, नतमस्तक मुद्रा में कहा।

"मन्त्रीजी को जाकर बुलाओ।"

"जी सरकार।"

और कुछ क्षणों में ही वृद्ध मन्त्री ने महाराजा भवानीसिंह के सम्मुख हाथ जोड़, अभिवादन कर, बड़ी विनम्रता से पूछा—"महाराज! क्या आज्ञा है?"

"तात, बहुत दिनों से सेंवड़ा-बड़ौनी से वहाँ की कुशल-क्षेम देखने के

लिए बार-बार सन्देसे आ रहे हैं। कल प्रातः ही सेंवड़ा चलने का सारा इन्तज़ाम कर लीजिये।"

"उत्तम विचार है, राजन्।" पुनः नतमस्तक हो मन्त्री महोदय लौट गये।

महाराज भवानीसिंह अंग्रेज़ी-शासनकाल में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में दतिया रियासत के राजा थे। वे बुन्देलखण्ड के शक्तिशाली शासकों में से एक थे। सूर्य की भाँति दमकता हुआ ओज उनके कान्तिमय मुख पर वीरता की स्पष्ट छाप अंकित करता था। शौर्य के साथ-साथ वे शासन के मामले में भी बड़े ही न्यायप्रिय और निष्पक्ष राजा थे। उनका अधिकार मीलों तक फैला हुआ था जिसमें से एक सेंवड़ा गाँव भी था। सेंवड़ा ऐसा था मानों प्रकृति ने अपनी सारी सुषमा वहाँ बिखेर दी हो, नदी-झरने, फल-फूल, पशु-पक्षी सभी कुछ वहाँ झिलमिलाते, खिलते, कलरव और क्रीड़ा किया करते थे। उसी रमणीय स्थान के वासियों की कुशल-क्षेम जानने राजा वहाँ पधारने जा रहे थे। तुरन्त उनकी आज्ञा का पालन हुआ। दूसरे दिन, प्रातःकाल ही दतिया के राजमहल के सामने समलंकृत हाथी उपस्थित था। ढाल-तलवार-भाला इत्यादि लिये हुए अंगरक्षक और सैनिक अपने-अपने घोड़ों पर सवार, महल के द्वार पर महाराज के आगमन तथा उनके आदेश की प्रतीक्षा में खड़े थे। कुछ ही देर में सिर पर बुन्देली पगड़ी, जड़ाऊ अँगरखा और कमर में शाही तलवार लटकाये महाराज उपस्थित हुए। सभी के मस्तक अभिवादन में श्रद्धा से झुक गये। साथ ही "महाराज की जय हो" के नारों से धरती-आकाश गूँज उठे। महाराज ने हाथ जोड़ कर सबके अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया, हाथी के हौदे पर बैठे और उनके आदेश पर महावत ने हाथी को अंकुश लगाया।

हाथी मस्ती में झूमता हुआ चल पड़ा, उसके गले में बँधी घण्टियाँ रुनुक-झुनुक बज उठीं। सैनिकों ने अश्वों की लगामें तानीं, घोड़े हिनहिना उठे और महाराज का अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे चल पड़े।

नगर की सीमा को पार कर काफ़िला सेंवड़ा वाले मार्ग पर चल पड़ा। अश्वों की टापें धूल के बादल वायुमण्डल में छोड़ती हुई चली जा रही थीं। दिन का एक पहर बीतते-न-बीतते वह काफ़िला सिनकुआँ गाँव के किनारे पहुँच गया।

फागुन-चैत का महीना था। आकाश में, पूरब दिशा में सूरज कुछ ऊपर चढ़ आया था। वातावरण में गर्मी आ गयी थी। महाराज की आज्ञा से वह काफ़िला गाँव के बाहर ही एक बाग़ में सुस्ताने के लिए रुक गया। तम्बू

तन गये। महाराज का खेमा भी तन गया। महाराज खेमे के बाहर खड़े होकर गाँव के नैसर्गिक सौन्दर्य का रसपान करने लगे। तभी उनकी दृष्टि कुछ दूर पनघट पर जाकर ठहर गयी। एक बड़ा सा पक्का कुआँ। चारों ओर ऊँची जगत और उसके चारों ओर गोल चबूतरा। समीप ही दो-चार सघन वृक्षों की हरीतिमा की सुखदायिनी छाया और पनघट पर पनिहारिनों का जमघट—विभिन्न उम्र की, विभिन्न वर्णों की, विभिन्न जातियों की पनिहारिनें! सबके चेहरों पर लम्बे-लम्बे घूँघट—मान-मर्यादा की पराकाष्ठा।

महाराज की दृष्टि पनघट से हट कर सहसा पनघट की ओर जाने वाली एक नवोढ़ा पर टिक गयी। सिन्दूरी लाल रंग का लहँगा, पीले रंग की चोली, उसी से मेल खाती गोटेदार ओढ़नी और मुख पर पड़ा हुआ वह घूँघट, मानों शरत्कालीन चन्द्रमा पर हलके बादल का टुकड़ा छा गया हो। उस नवोढ़ा की दृष्टि भी कोलाहल के कारण बाग़ की भीड़ पर पहुँच गयी। इतने तम्बुओं, राजसैनिकों इत्यादि को देख कर वह कुछ भयभीत हुई, क़दम कुछ तेज़ हो गये, हृदय की धड़कनें बढ़ गयीं, लेकिन साथ ही बुन्देली परम्परा के अनुसार घूँघट की ओट से मृगशावक के चञ्चल नेत्रों की भाँति दो नेत्र सहसा चमक उठे और महाराज के ओजपूर्ण मुख पर घूमते-घूमते जाकर टिक गये। महाराज के नेत्रों ने भी उस दृष्टि को पकड़ लिया। उनके हृदय में एक कौतूहल-सा जागा, लेकिन वह कौतूहल उसके मुख को पूर्ण रूप से देख न सकने के कारण हृदय में सुप्त ज्वालामुखी की भाँति दबा-सा रह गया।

नवोढ़ा पनिहारिन के क़दम पनघट की ओर बढ़ते गये, पर उसके नेत्र घूम-घूम कर बार-बार महाराज के मुख पर जाकर ही अटक जाते थे। मार्ग में पड़ने वाले गड्ढे ने कुछ क्षण को उसे ध्यान से विचलित अवश्य कर दिया, पर वह सम्भल गयी। उसने हाथों से गिरती गागर को सम्भाला। दृष्टि पुनः पनघट पर बढ़ने वाले क़दमों के साथ-साथ महाराज के मुख पर जाकर बार-बार टिक जाती थी।

पनघट पर वह आन पहुँची। गागर को उतार कर उसने कुएँ के चबूतरे पर रखा। रंग-बिरंगी चूड़ियाँ खनक उठीं। पनघट पर भीड़ अधिक थी, इसलिए वह बैठ गयी। घड़े पर हाथों को रख कर पुनः घूँघट की ओट से महाराज की ओर एकटक देखा। महाराज के हृदय में कौतूहल और जिज्ञासा के साथ-साथ स्वाभिमान भी जाग उठा। वे बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि आज तक इस बुन्देलभूमि पर उनसे दृष्टि मिलाने का कोई दुस्साहस नहीं

कर सका और आज इस युवती का ऐसा दुस्साहस! ऐसी धृष्टता!! उनकी भृकुटियाँ अनायास तन गयीं, नेत्र कुछ लाल हो उठे और नथुने फूल गये।

तभी पनघट प्रायः सूना हो गया। पनघट पर वह नवोढ़ा अकेली बैठी थी, लेकिन उसके मस्तिष्क में विचारों का जमघट था। पानी भरना भूल गयी, वैसे ही ख़ाली गागर उठायी और लौट पड़ी। यह सब महाराज की आँखों से छिपा न रहा, पर कारण समझने में वे बिलकुल असमर्थ रहे।

नवोढ़ा आगे बढ़ी, उसकी दृष्टि फिर से महाराज के मुख पर जाकर टिक गयी, लेकिन तभी उसे सिर पर बोझ हलका लगा, वह अपनी मूर्खता पर मन-ही-मन हँस पड़ी, शर्म से उसकी दृष्टि ज़मीन की ओर झुक गयी। वह दोबारा पनघट पहुँची। गागर को ज़मीन पर रख कर रस्सी का फन्दा लगाया, कुएँ में गागर डाली, पानी में हलचल मच गयी। यह हलचल उस युवती को ऐसी लगी मानों उसका हृदय-कूप भी नाना प्रकार के विचारों से आन्दोलित हो उठा। इधर गागर में फन्दा डालते वक़्त महाराज को लगा जैसे उनके मन की शान्ति का गला घोंट दिया गया, उनके मस्तिष्क को झकझोर दिया गया। क्षण भर उन्होंने सोचा और सहसा उनकी वाणी फूट पड़ी—"कोई है?"

"जी सरकार" पास खड़े एक सैनिक ने अपने भाले को ज़मीन पर ठोंकते हुए अभिवादन किया। "देखो, सामने पनघट की ओर जाओ और वहाँ उस पनिहारिन से जाकर पूछो कि..."

महाराज भवानीसिंह क्षण भर के लिए ठिठक गये। सैनिक नतमस्तक आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहा—"हाँ, उससे जाकर पूछो कि महाराज भवानीसिंह को बार-बार क्यों घूर कर देख रही हो?"

सैनिक ने अभिवादन के साथ प्रत्युत्तर दिया—"महाराज की जय हो। अभी जाकर पूछता हूँ..." सैनिक के क़दम आगे बढ़ गये।

तभी महाराज ने फिर उसे आवाज़ दी। वह उलटे पाँव लौट आया। सिर नमन में झुका रहा। महाराज बोले, "ठीक है, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं, मैं ही स्वयं जाकर उस गुस्ताख़ से पूछता हूँ कि क्या उसे मौत का भय नहीं, इस तरह मुझे बार-बार क्यों पलट-पलट कर घूर रही है?"

सैनिक रुक गया, महाराज के पैर आगे बढ़ चले। उन्होंने उस नवोढ़ा पनिहारिन के हृदय की गहराई को नापने का मन में दृढ़ निश्चय कर लिया था। तेज़ क़दमों से चल कर वे उसके समीप आकर रुके।

नवोढ़ा ठिठक गयी। लेकिन उसने पुनः साहस बटोर कर अपने घूँघट

की ओट से एक बार फिर अपनी दृष्टि महाराज के मुख पर डाली और तत्काल नीचे झुका ली।

महाराज की नज़रें उसके गोरे मुख पर जाकर टिक गयीं। बड़े-बड़े चञ्चल नेत्रों की चपलता ने उनके मन में एक अजीब-सी स्थिति पैदा कर दी, लेकिन साथ-साथ वे उस युवती के साहस की भी मन ही मन सराहना कर रहे थे। जाते ही उन्होंने प्रश्न उछाला—"भद्रे, मैं तुमसे बस एक बात पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो हुकुम, हमारी जो समझ में आयेगा, हम जवाब दे देंगी।" युवती ने घूँघट की ओट में कहा।

महाराज उसकी निश्छल वाणी से प्रसन्न हो उठे, जरा हँस कर बोले, "क्या तुम्हें मौत का भी डर नहीं है?"

नवोढ़ा चिहुँक उठी—"क्यों महाराज! हम तो अपनी गैल जा रही हैं। हमने क्या किसी का कुछ बिगाड़ा या छीना है जो हमें मौत का ख़ौफ़ हो?"

महाराज उसकी सरलता पर मुग्ध हो गये। मुस्कान की एक हलकी रेखा ने ग़ुस्से की सारी लकीरों को पोंछ दिया। वे कह उठे—"यह तो ठीक है कि तुमने न किसी का कुछ बिगाड़ा है, न छीना है, पर यह तो बताओ कि इतनी देर से हमारी तरफ़ इस तरह आँखें गड़ा-गड़ा कर क्यों घूर रही थीं?"

"क्यों महाराज, क्या आपको देखने में कोई मनाही है?"

"नहीं, कोई मनाही नहीं है, पर तुम यह नहीं जानतीं कि आज तक किसी का साहस नहीं हुआ कि महाराज भवानीसिंह की आँख से आँख मिला सके। तुम्हारी जगह अगर कोई आदमी होता तो उसकी आँखें ही निकलवा ली जातीं।"

"नजर-नजर में फरक होता है महाराज, और फिर हम स्त्री-जाति की औकात ही क्या जो आपसे नजर मिलायें।"

महाराज उसकी निर्भीकता और वाक्पटुता से बड़े प्रभावित हो उठे। उन्होंने तत्काल प्रश्न किया—"तुम्हारी कौन-सी नज़र है? तुम किस नज़र से हमको बार-बार इस तरह घूर-घूर कर देख रही थीं?"

"जैसे एक भगत अपने भगवान् को देखता है, परजा अपने राजा को देखती है, बेटी अपने पिता को देखती है। और...।"

महाराज की हृत्तन्त्री के समस्त तार एक साथ झंकृत हो उठे। हृदय की सभी शंकाएँ निर्मूल हो गयीं। एक पग और आगे बढ़ कर उन्होंने मुस्कुराते

हुए पूछा—"और से क्या मतलब?"

युवती ने एक निःश्वास छोड़ा और कह उठी—"महाराज, बचपन से जबसे दतिया से ब्याह कर यहाँ आयी हूँ, तबसे दोबारा दतिया जाने का अवसर ही नहीं मिला। महाराज, बचपन में एक बार दशहरे पर आपको देखा था, उस दिन के बाद हृदय में बहुत-बहुत इच्छा थी कि आपके दरसन फिर एक बेर हो जायें सो आज भगवान् ने हमारी बरसों की वह साध पूरी कर दी।"

महाराज के हृदय में वात्सल्य का सागर हिलोरें मार उठा। बड़ी आत्मीयता से उन्होंने पूछा—"बड़े निर्मोही हैं तुम्हारे पिता जो ब्याह के बाद तुम्हें बुलाया तक नहीं!"

महाराज ने देखा, उनके इस वाक्य ने नवोढ़ा का दिल दुखा दिया। ओढ़नी के एक छोर से उसने अपनी गीली आँखें पोंछीं। वे बोल उठे—"मालूम होता है, तुम्हें हमारी बात बुरी लगी। ठीक ही तो है, हमें किसी की घर-गृहस्थी से क्या लेना-देना...।"

उनकी बात काटते हुए युवती बोली—"नहीं, महाराज! यह आप कैसे कह रहे हैं कि किसी की घर-गिरस्ती से आपका वास्ता नहीं। अरे आप राजा हैं, पिता की जगह हैं। आपको तो हर एक की फ़िकर करनी चाहिये। लेकिन यह आपको कैसे पता लगेगा कि हमारे पिता अब इस दुनिया में नहीं हैं कि हमें घर बुलाते।"

भवानीसिंह का हृदय ग्लानि और दुःख से भर उठा। तभी युवती की आवाज़ उनके कानों से टकरायी—"महाराज! तो अब जाने का हुकुम है? घर से निकले बड़ी देर हो गयी है। लेकिन आज हम बहुत-बहुत खुस हैं कि हमारी बरसों की साध पूरी हो गयी महाराज!"

महाराज अब अपने को सम्भाल न सके। स्नेह और वात्सल्य में डूबे, सहज भाव से नवोढ़ा के कन्धे पर हाथ रख कर बोले, "अभी ज़रा रुको। यह तो तुमने बताया ही नहीं कि तुम्हारे घर में और कौन-कौन हैं?"

एक बार फिर युवती ने अपनी गीली आँखें पोंछते हुए कहा—"महाराज, हम अभागिन के घर में कोई नहीं है। माँ बचपन में ही स्वर्ग सिधार गयी थीं। पिता ने बड़े लाड़-प्यार से पाल-पोस कर बड़ा किया, पर उन्हें बीमारी ने ऐसा जकड़ा कि बड़ी मुश्किल से हमारे हाथ पीले कर पाये, और वे भी हमें इस दुनिया में अकेली छोड़ के चल बसे। अब तो महाराज, यह सिनकुआँ ही हमारी ससुराल है और यही है हमारा पीहर।"

उसके अन्तिम वाक्य ने महाराज के हृदय को झकझोर कर रख दिया। उनके नेत्रों से दो अश्रुबिन्दु ढुलक गये। गला भर आया, किसी तरह कह पाये—"अब महाराज मत कहो बेटी। आज से भवानीसिंह तुम्हारे पिता हैं। अब यह कभी मत समझना कि तुम्हारे पिता नहीं हैं, तो तुम्हारा दतिया छूट गया। अभी तुम्हारे घर चलता हूँ और वहाँ से तुम्हारी विदा कराता हूँ।"

नवोढ़ा का बायाँ हाथ गगरी पर पहुँच गया और दाहिने हाथ से महाराज के चरणों को छूने के लिए जैसे ही झुकी, महाराज ने उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं बेटी, नहीं। भवानीसिंह आज से तुम्हारा पिता हो गया है, अब राजा नहीं है। पैर राजा के छुए जाते हैं, पिता के नहीं। बेटी से पैर छुआ कर मैं नरक में नहीं जाना चाहता। कहते-न-कहते पिता ने पुत्री को आलिंगन में भर लिया।

पिता पैदल ही पुत्री के पीछे-पीछे चल दिये।

सिनकुआँ गाँव महाराज की जयजयकार से गूँज उठा। नवोढ़ा के घर पर पहुँच कर महाराज के आतिथ्य-सत्कार में सारा घर जुट गया। उनके सामने भोजन का थाल आया तो राजा के मुख से निकल पड़ा—"नहीं, नहीं। यह हमारी बेटी की ससुराल है। बेटी के घर खाना पाप है। हम तो अपनी बेटी को विदा कराने आये हैं।"

हाथी द्वार पर उपस्थित हो गया। भवानीसिंह की बेटी की बिदाई हुई। दोनों हाथी के हौदे पर बैठे। "महाराज की जय हो" से धरती-आकाश एक हो गये। पिता के पास बैठी बेटी के आँसू थमने का नाम न ले रहे थे।

महावत ने अंकुश लगाया। हाथी चिंघाड़ कर बाग़ की ओर चल पड़ा। महाराज की आज्ञा से तम्बू उखड़ गये। सैनिक घोड़ों पर सवार हो राजा के आदेश की प्रतीक्षा में थे कि तभी उनके शब्द वातावरण में गूँज उठे —"यह हमारी बेटी का गाँव है। यहाँ का पानी पीना भी पाप है। जो पानी यहाँ भरा है, उसे भी यहीं फैला दो। और यह काफ़िला आज सेंवड़ा नहीं जायेगा। दतिया लौट चलो।"

हाथी पुनः चिंघाड़ उठा। अश्व हिनहिना उठे। अश्वों के टापों की निरन्तरता मानों यही सन्देसा दे रही थी—"महाराज की बेटी को जल्द-से-जल्द उसके पीहर पहुँचाना है।"

—वन्दना

वीरता है, सभी परिस्थितियों में सत्य के साथ खड़ा रहना, विरोधों के बीच भी सत्य की घोषणा करना और जब कभी ज़रूरत हो तो उसके लिए लड़ना।

और साथ ही हमेशा अपनी उच्चतम चेतना से कार्य करना।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

SRI AUROBINDO SOCIETY

Notice for the Annual General Meeting

The Annual General Meeting of the members of Sri Aurobindo Society will be held on Saturday, the 24th September 2022, at 4.00 p.m. at its registered office, Sri Aurobindo Bhavan, 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, to transact the following business:

1. To confirm the minutes of the last Annual General Meeting held on 7th February 2022.
2. To consider and approve the audited Balance Sheet and Income & Expenditure Account of the Society for the year ended 31.03.2022.
3. To consider and adopt the Executive Committee's Annual Report of Activities for the year 2021–2022.
4. To appoint an auditor for the Society for the year 2022-2023.
5. To consider and adopt the decision of the Executive Committee of the Society to amend Clause 3.1 of the Rules & Regulations to increase the maximum number of members of the Executive Committee to 15 (Fifteen only).
6. To consider any other matter with the permission of the chair.

Sd/-

18.08.2022 (Pradeep Narang)

Puducherry Chairman

Note: The members are entitled to appoint proxy. Proxies must be deposited at the Registered Office of the Society, No.8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071, during office hours, in advance but not less than 48 hours before the time of the meeting. The proxy should be a member of the Society. Proxy form is printed below.

✄ .... ✄ .... ✄ .... ✄

PROXY

SRI AUROBINDO SOCIETY,
Regd. Office: 8, Shakespeare Sarani, Kolkata – 700 071.

I, ... being a member of Sri Aurobindo Society, having membership No. .... valid upto .... do hereby appoint .... having Society's membership No. .... valid upto .... as my proxy in my absence to attend and vote for me and on my behalf at the Annual General Meeting of the Society, to be held on Saturday, the 24th September 2022, at 4.00 p.m. and at any adjournment thereof.

In witness whereof, I have set my hand this
.... day of .... 2022.

Revenue Stamp

(Signature of the member across the stamp)

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

विनम्र अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुद्दुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द–विश्व– निलयम् के नव–निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य –निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ – श्री अरविन्द के दिव्य – ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि –कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य – देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान–राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान–राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP. ICICI Bank, Indore (M. P.) – 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sosindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry – 605 001, Website: www.aurosociety.org

Bank Details –
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name – Canara Bank
Branch – M. G. Road Indore – 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

Proposed View

Date of Publication: 1st September 2022
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

मुखपृष्ठ के बारे में...

मुखपृष्ठ पर दिया हुआ नक़्शा महाभारत-काल का है जिसमें हम सम्पूर्ण भारत को उसके विभिन्न राज्यों के साथ एक सामान्य धर्म और संस्कृति में पिरोया हुआ पाते हैं। यह है वेद के मनीषियों द्वारा देखा गया उस अखण्ड भारत का अन्तर्दर्शन जो कुलीन-वर्ग तथा धर्म की भूमि है।

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष–२००रु.; तीन वर्ष–५८०रु.; पाँच वर्ष–९६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत
सम्पादिका : वन्दना
Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org